चार अध्याय

चार अध्याय

रवीन्द्र की रचनाओं के अनुवाद संसार की
प्रमुख भाषाओं में हो चुके हैं
वे अकेले ऐसे भारतीय साहित्यकार हैं जिन्हें
नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया
कविता के साथ-साथ उनके उपन्यास भी
साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं
यहां प्रस्तुत है उनका एक लघु उपन्यास
'चार अध्याय', और एक कहानी 'त्याग'
'चार अध्याय' में स्त्री और पुरुष की
प्रकृति का मार्मिक चित्रण हुआ है
एला और अतीन ऐसे चरित्र हैं जिनमें
रूप, शील, त्याग, विवेक और प्यार सब कुछ है
पर जो परिस्थितिवश अपने अधूरे
अरमानों के साथ ही भिंचकर रह जाते हैं···
इस के अनुवादक हैं श्रीरामनाथ 'सुमन'



हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी॰ टी॰ रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

चार अध्याय

रवीन्द्र नाथ ठाकुर



CHAR ADHYAYA : RAVINDRANATH THAKUR : NOVEL

लाइब्रेरी संस्करण

मूल्य : दो रुपये

चार अध्याय

भूमिका

एला को याद आ रहा है कि उसके जीवन का प्रथम अनुभव विद्रोह के बीच ही हुआ था। उसकी मां मायामयी सनकी प्रकृति की थीं। उनका व्यवहार बुद्धि-विवेक के अनुकूल नहीं हुआ करता था। अपने उच्छृंखल स्वभाव के असंयत झोंकों से वे अपनी गृहस्थी को प्रायः क्षुब्ध करती रहती थीं। अन्यायपूर्वक लोगों को दबा देतीं और अकारण ही सन्देह करने लगती थीं। लड़की जब किसी अपराध को अस्वीकार करती तो वे चट से कह बैठतीं कि झूठ बोल रही है। उधर लड़की का यह हाल कि उसे बिना किसी मिलावट के सच्ची बात कह देने का व्यसन-सा था। इसीलिए उसीको सबसे ज्यादा दण्ड भी मिलता था। सब तरह के अन्याय के विरुद्ध असहिष्णुता उसके स्वभाव में प्रबल हो उठी। उसकी मां के मन में यह बात आ गई कि यह सब स्त्रीधर्म के विरुद्ध है।

एक बात उसने बचपन से ही समझ ली थी कि दुर्बलता अत्याचार का मुख्य वाहन है—दुर्बल पर ही लोग अत्याचार करते हैं। उसके परिवार में जितने लोग आश्रित रहकर पेट भरनेवाले थे, जो पराये अनुग्रह-निग्रह, कृपा-क्रोध के संकुचित घेरे में बेबसी के साथ बंधे हुए थे, उन्हीं लोगों ने परिवार के वातावरण को दूषित किया है; उन्हीं लोगों ने उसकी मां के अंध प्रभुत्व के रास्ते की सब कठिनाइयों को दूर कर दिया है। इस अस्वास्थ्यकर स्थिति की ही यह प्रतिक्रिया हुई

कि छोटी उम्र से ही लड़की के मन में स्वाधीनता की आकांक्षा इतनी प्रबल हो उठी थी।

एला के बाप नरेशदास गुप्त साइकालोजी (मनोविज्ञान) में विलायत से डिग्री ले आए हैं। उनकी विचारशक्ति बड़ी गहरी है और अध्यापन-कार्य में उन्होंने बड़ा नाम कमाया है। उन्होंने प्रादेशिक प्राइवेट कालेज में ही काम करना पसन्द किया, क्योंकि उसी प्रदेश में उनका जन्म हुआ है। सांसारिक उन्नति की ओर उनके मन में विशेष लोभ नहीं है; उस विषय में उनकी जानकारी भी कम है। भूल से लोगों का विश्वास कर लेते हैं और विश्वास करके हानि उठा लेने पर भी, बार-बार के अनुभव के बाद भी अपनी आदत में सुधार नहीं कर पाते। ठगकर अथवा अनायास ही जो उपकार करा लेते हैं उनकी कृतघ्नता सबसे ज़्यादा कठोर होती है। जब कभी वह प्रकट हो जाती है तो उसे मनस्तत्त्व का विशेष तथ्य मानकर वे अनायास स्वीकार कर लेते हैं; मन में या मुंह से कभी शिकायत नहीं करते। सांसारिक बुद्धि की इस त्रुटि के लिए स्त्री से कभी उन्होंने क्षमा नहीं पाई; उन्हें सदा उलाहने ही मिले हैं। शिकायत के कारण पुराने हो जाने पर भी उनकी स्त्री कभी उन्हें भूलती नहीं थीं; जब-तब तेज़ व्यंग्य कर-करके उनके दाह का ठंडा होना असम्भव कर देती थीं। इस विश्वास-परायणता और उदार वृत्ति के कारण अपने बाप को ठगे जाते और दुःख पाते देखकर ही उनपर एला का व्यथापूर्ण स्नेह था—जैसा करुणा से भरा स्नेह मां का अपने अबोध बच्चे के प्रति होता है। उसे सबसे ज़्यादा चोट तब लगती थी जब उसकी मां कलह की भाषा में तीव्र संकेत करती थीं कि बुद्धि-विवेचना में वे अपने पति से श्रेष्ठ हैं। एला ने अनेक बहानों से मां द्वारा पिता का अनादर होते देखा है, यहां तक कि उस बात को सोचकर अपने निष्फल गुस्से के कारण आंख के जल से रात को उसका तकिया भीग गया है। इस तरह के बहुत ज़्यादा धीरज को अन्याय समझकर एला ने कितनी ही बार अपने पिता को मन ही मन अपराधी ठहराया है।

बहुत ज़्यादा दुःखित होकर एक दिन एला ने पिता से कहा—"इस तरह अन्याय को चुपचाप सह लेना ही अन्याय है।"

नरेश ने कहा—"स्वभाव का प्रतिवाद करना और जलते लोहे को हाथ फेरकर ठंडा करने की चेष्टा करना, एक ही बात है एला। ऐसा करना बहादुरी की बात हो सकती है किन्तु आराम की नहीं।"

"चुपचाप पड़े रहने में आराम उससे भी कम है।" इतना कहकर एला तेज़ी से चली गई।

इधर घर-गृहस्थी में एला देखती है कि जो लोग मां का मन रखने की कला जानते हैं, उनके षड्यन्त्र से निरपराध पर ही निष्ठुर अन्याय हुआ करता है। एला से यह सहन नहीं होता; वह उत्तेजित होकर न्यायकर्त्री के सामने सच्चे प्रमाण उपस्थित करती है किन्तु कर्तृत्व के अहंकार के सामने अकाट्य युक्ति उपस्थित करना ही दुस्सह स्पर्धा है। अनुकूल तूफानी हवा की तरह वह न्याय की नाव को आगे नहीं बढ़ाती, बल्कि उसे डगमगाकर डुबाने-डुबाने को कर देती है।

इस परिवार में एक और बात ऐसी थी जो एला के मन पर बराबर चोट पहुंचाती रहती थी। वह थी उसकी मां की पवित्रता की—छूतछात की सनक। एक दिन किसी मुसलमान मेहमान को बैठने के लिए एला ने चटाई बिछा दी थी—मां ने उस चटाई को फेंक दिया। परन्तु गलीचा बिछाने पर कोई दोष न होता। एला का तार्किक मन बिना तर्क किए मानता नहीं। एक दिन उसने पिता से पूछा—"अच्छा, यह सब छुआछूत और नहाने-धोने, खाने-पीने की सनक स्त्रियों पर ही क्यों इस प्रकार सवार हो जाती है? इसमें हृदय को तो कहीं स्थान नहीं, बल्कि उसका विरोध ही है। यह तो मानो मशीन की तरह अंधा होकर चलना है।" साइकालोजिस्ट (मनोविज्ञानी) पिता ने कहा—"स्त्रियों का मन हज़ारों वर्ष से सांकल में बंधा रहा है। इसलिए वे तो मानती ही जाएंगी, सवाल नहीं करेंगी, इसी बात के लिए तो उन्हें समाज के नेताओं से इनाम मिले हैं; इसीलिए मानना जितना ही अंधा होता है उनके निकट

उसका दाम उतना ही ज्यादा होता है। स्त्रैण पुरुषों की भी यही दशा है।" आचार की निरर्थकता के बारे में बार-बार मां से प्रश्न किए बिना एला से रहा नहीं जाता। उत्तर में उसे बार-बार भर्त्सना-फटकार ही मिली है। लगातार ऐसी चोटें खाते रहने के कारण उसका मन विद्रोही हो उठा है।

नरेश ने देखा कि इन सब पारिवारिक झगड़ों के कारण लड़की का स्वास्थ्य खराब हो रहा है; इससे उन्हें गहरी चोट लगी। इसी बीच एक दिन एला ने, किसी विशेष अन्याय से कठोर रूप में चोट खाकर, पिता के पास आकर कहा—"बाबूजी, मुझे कलकत्ता के किसी बोर्डिंग (छात्रावास) में भेज दो।" प्रस्ताव दोनों के लिए ही दुःखदायी था, किन्तु बाप ने स्थिति समझ ली और मायामयी के बहुत ज्यादा विरोध करने पर भी एला को दूर भेज दिया और फिर अपनी बेरहम गृहस्थी और पढ़ने-पढ़ाने के काम में लग गए।

मां ने कहा—"शहर में भेजकर लड़की को मेमसाहब बनाना चाहते हो तो बना डालो, किन्तु जब ससुराल में तुम्हारी दुलारी बेटी को प्राणान्तक कष्ट उठाना पड़े तब मुझे दोष न देना।" लड़की के रंग-ढंग में कलियुगी स्वतन्त्रता के कुलक्षण देखकर उसकी मां ने ऐसी आशंका बार-बार प्रकट की है। एला अपनी भावी सास के हाड़ जलाएगी, इसे बिलकुल निश्चित समझ वह अपनी होनेवाली काल्पनिक समधिन के प्रति समवेदना से भर उठती थीं। इसीसे एला के मन में यह धारणा घर कर चली थी कि आत्मसम्मान को खोकर, न्याय-अन्याय का ज्ञान नष्ट करके ही लड़कियों को ब्याह के लिए तैयार होना पड़ता है।

जब एला ने मैट्रिक पास कर कालेज में प्रवेश किया तो उसकी मां की मृत्यु हो गई। नरेश ने बीच-बीच में ब्याह के लिए लड़की को राजी करने की बड़ी कोशिश की, पर वह तैयार नहीं हुई। एला अपूर्व सुन्दरी है; वर होने के लिए लड़कों की ओर से प्रार्थी होने-वालों का अभाव नहीं था, किन्तु विवाह के प्रति विमुखता उसके संस्कार

में समा गई थी। लड़की ने परीक्षाएं तो पास कर लीं, किन्तु पिता उसे अविवाहित छोड़कर ही मर गए।

सुरेश था उनका छोटा भाई। नरेश ने ही अपने इस भाई को पाल-पोसकर बड़ा किया था, खर्च देकर अन्त तक पढ़ाया था। दो साल के लिए उसे विलायत भेजने पर उन्हें अपनी स्त्री द्वारा लांछित और महाजन का ऋणी होना पड़ा था। सुरेश इस समय डाक-विभाग में उच्च अफसर है। नौकरी के सिलसिले में उसे अनेक प्रदेशों में दौरा करना पड़ता है। उसीके ऊपर अब आ पड़ा एला का भार। उसने मन लगाकर उस भार को संभाल लिया।

सुरेश की स्त्री का नाम है माधवी। वे जिस परिवार की लड़की हैं उसमें लड़कियों की परिमित पढ़ाई की ही परम्परा है। विलायत से वापस आने पर पति जब ऊंचे पद पर नियुक्त हुए, तब उन्हें दूर-दूर घूमने-फिरने का मौका मिला और बाहर के अनेक लोगों से सामाजिक सम्बन्ध निभाना उनके लिए ज़रूरी हो गया। इसलिए कुछ ही दिनों के अभ्यास से माधवी भी निमंत्रण-आमंत्रण की विदेशी पद्धति का पालन करने में पटु हो गईं। यहां तक कि गोरों के क्लब में भी वे अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी भाषा से, सकारण या अकारण हंसी से उसे पूरा करके, काम चला लिया करती थीं।

इसी अवधि में जब सुरेश किसी प्रान्त के एक बड़े शहर में रह रहे थे, एला उनके घर आई। उसके रूप, गुण और विद्या ने काका के मन में गर्व जगा दिया। वे अपने ऊपरवालों, साथियों तथा देशी-विलायती मिलनेवालों एवं परिचितों के सामने अनेक बहानों से एला को प्रकट करने के लिए व्याकुल हो उठे। एला की स्त्री-बुद्धि को यह समझते देर न लगी कि इसका फल अच्छा नहीं होगा। माधवी झूठे आराम का बहाना करके बार-बार कहने लगीं—"मेरी जान बची—विलायती परम्परा की सामाजिकता का बोझ मुझपर क्यों लादना झूठ-मूठ को। मुझमें उसके लिए न विद्या है, न बुद्धि।" यह रंग-ढंग देख एला ने अपने चारों ओर एक जनानखाना-सा खड़ा कर

लिया। उसने बड़े उत्साह से सुरेश की लड़की सुरमा को पढ़ाने का भार अपने ऊपर ले लिया, और शेष समय को उसने एक 'थीसिस' लिखने में लगाया, जिसका विषय था—बंगला मंगल-काव्य और चॉसर के काव्य की तुलना। इस बात को लेकर सुरेश भी बड़े उत्साहित हुए और इस समाचार को उन्होंने चारों ओर फैला दिया। माधवी ने मुंह बिचकाकर कहा—"ज़्यादा शेखी अच्छी नहीं।"

पति से बोलीं—"झट से लड़की को एला से पढ़वाना शुरू कर दिया। भला, अधर मास्टर ने क्या कसूर किया था! तुम कुछ भी क्यों न कहो, किन्तु मैं तो···"

सुरेश अवाक् हो गए। बोले—"तुम कहती क्या हो? एला के साथ अधर की तुलना!"

"दो-एक नोट की पुस्तकें रटकर पास हो जाने से ही विद्या नहीं आती।" कहकर टेढ़ी गर्दन किए माधवी कमरे से बाहर चली गई।

एक बात वे पति से कहते-कहते रुक जाती हैं—'सुरमा की उम्र तेरह पूरी हो चली। आज हो या कल लड़का ढूंढ़ने के लिए दौड़धूप करनी पड़ेगी। तब एला सुरमा के पास रही तो—आज के लड़कों की आंखों में तो रंग-रूप का नशा रहता है, वे क्या जानें कि सुन्दर किसे कहते हैं।' तब वे गहरी सांस लेकर सोचने लगती हैं—स्वामी से इन बातों को कहना व्यर्थ है। घर-गृहस्थी के मामलों में पुरुष अंधे होते हैं।

बस, गृहिणी इस चेष्टा में लग गई कि जितनी जल्द हो एला का विवाह कर दिया जाए। ज़्यादा कोशिश भी नहीं करनी पड़ी—अच्छे-अच्छे लड़के खुद ही आकर जुटने लगे—ऐसे लड़के कि उनमें से किसीके साथ सुरमा का ब्याह कर देने के लिए माधवी का मन ललचाने लगा। किन्तु एला बार-बार उन्हें निराश करके लौटा देती।

एला की इस हठ से भरी नासमझी से सुरेश खीझ उठे और चाची को तो उसकी यह आदत असह्य ही हो उठी। वे तो यही जानती रही हैं कि जिसकी उम्र हो गई है उस बंगाली लड़की के लिए

सत्पात्र की उपेक्षा करना अपराध है। वे इस उम्र में होनेवाली नाना प्रकार की दुर्घटनाओं की आशंका करने लगीं और उनका हृदय अपनी ज़िम्मेदारी का बोझ समझकर अभिभूत होने लगा। एला स्पष्ट समझ गई कि अब काका के स्नेह और उनकी गृहस्थी के बीच विरोध होने का अवसर आ गया है।

ऐसे ही समय उस शहर में इन्द्रनाथ आ गए। देश के छात्र उन्हें चक्रवर्ती राजा की भांति मानते थे। उनका तेज असाधारण था और विद्या में भी बड़ी प्रसिद्धि थी। एक दिन सुरेश के घर उनका निमंत्रण था। उस दिन कोई मौका पाकर, परिचय न होते हुए भी, एला ने बिना किसी संकोच के उनके पास आकर कहा—"क्या आप मुझे अपना कोई काम नहीं दे सकते ?"

आजकल के दिनों में ऐसी प्रार्थना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, फिर भी इस लड़की की दीप्ति देखकर इन्द्रनाथ चौंक पड़े। बोले—"अभी हम लोगों ने कलकत्ता में लड़कियों के लिए नारायणी हाईस्कूल खोला है। मैं तुम्हें उसकी संचालिका का पद दे सकता हूं, तैयार हो ?"

"तैयार हूं, यदि आप मेरा विश्वास करें।"

इन्द्रनाथ ने एला के मुंह पर अपनी उज्ज्वल दृष्टि गड़ाकर कहा—"मैं आदमी पहचानता हूं। तुमपर विश्वास करने में मुझे एक क्षण भी देर न लगी। तुम्हें देखते ही मन में यह बात आई कि तुम नवयुग की दूती हो; तुम्हारे अन्दर नवयुग का आवाहन है।"

एकाएक इन्द्रनाथ के मुंह से ऐसी बात सुनकर एला का हृदय हिल उठा।

उसने कहा—"आपकी बातों से मुझे डर लगता है। भ्रमवश मुझे इतना ऊंचा न उठाइए। आपकी धारणा के लायक बनने के लिए दुस्साध्य चेष्टा करने में मैं टूट जाऊंगी। अपनी शक्ति की सीमा के भीतर, जहां तक मुझसे सम्भव होगा, आपके आदर्श की रक्षा करती रहूंगी, किन्तु अपने को उतनी ऊंची समझ न सकूंगी।"

इन्द्रनाथ बोले—"तुम्हें इतनी प्रतिज्ञा करनी होगी कि कभी तुम गृहस्थी के बंधन में न बंधोगी। तुम एक छोटे समाज की नहीं हो, तुम देश की हो।"

एला ने सिर ऊपर उठाकर कहा—"यही प्रतिज्ञा है मेरी।"

काका ने जाने को तैयार एला से कहा—"अब तुझसे कभी ब्याह की बात न करूंगा। तू मेरे ही पास रह। यहीं मुहल्ले की लड़कियों को पढ़ाने का भार लेकर एक छोटा-मोटा क्लास खोलने में हर्ज क्या है?"

काकी ने स्नेहार्द्र पति की इस नासमझी से अप्रसन्न होकर कहा—"अब वह बड़ी हो गई, अपनी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेना चाहती है, यह तो अच्छा ही है। तुम बीच में पड़कर बाधा क्यों डालते हो? तुम मन में चाहे जो समझो, पर मैं कहे देती हूं कि उसकी चिन्ता का भार मैं नहीं ले सकती।"

एला ने बड़ी दृढ़ता से कहा—"मुझे काम मिल गया है, मैं काम करने जाऊंगी।"

एला काम पर चली गई।

इस भूमिका के बाद पांच वर्ष बीत गए, अब कहानी बहुत आगे बढ़ चुकी है।

पहला अध्याय

दृश्य—चाय की दुकान। उससे ही लगा एक छोटा कमरा है। उस कमरे में बिक्री के लिए स्कूल-कालेज में पढ़ाई जानेवाली कुछ पुस्तकें सजी हुई हैं—ज्यादातर सेकेण्ड हैण्ड हैं। कुछ हैं यूरोप के आधुनिक कहानी-नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद। कम आमदनीवाले लड़के इनके पन्ने उलट-पुलटकर चले जाते हैं, दुकानदार आपत्ति नहीं करता। दुकान के मालिक हैं कन्हाई गुप्त, पेंशनभोगी पुलिस के भूतपूर्व सब-इन्सपेक्टर।

सामने सदर रास्ता है। उसकी बाईं ओर एक गली चली गई है। जो एकान्त में चाय पीना चाहते हैं उनके लिए कमरे के एक हिस्से को कटे-फटे टाट के पर्दे से घेरकर अलग कर दिया गया है। आज उसी तरफ किसी विशेष आयोजन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। काफी संख्या में स्टूल-कुर्सी न होने की कमी दार्जिलिंग चाय कम्पनी के मार्केदार पैकिंग बक्सों को रखकर पूरी कर दी गई है। चाय के पात्रों में भी असमानता है; उनमें से कुछ नीले रंग के हैं, कुछ सफेद। टेबल पर हैंडिल टूटे हुए दूध के पात्र में गुलदस्ता लगा दिया गया है। प्रायः तीन का समय है। लड़कों ने एला लता को निमंत्रण का समय दिया था ठीक ढाई बजे। कहा था कि एक मिनट बाद भी आओगी तो काम न चलेगा। असमय में निमंत्रण दिया गया था, क्योंकि उसी समय दुकान सूनी रहती है। चाय पीनेवालों की भीड़ साढ़े चार बजे के बाद ही लगती है। एला ठीक समय पर आ गई

थी। लड़कों में से एक का भी कहीं पता नहीं। अकेली बैठी उसीके बारे में सोच रही थी—तब क्या तारीख सुनने में भूल हो गई? इतने में इन्द्रनाथ को कमरे में प्रवेश करते देख चौंक पड़ी। इस जगह उनके आने की किसी प्रकार आशा नहीं की जा सकती थी।

इन्द्रनाथ यूरोप में बहुत दिनों तक रहे हैं; साइंस (विज्ञान) में उन्होंने विशेष ख्याति पाई है। यथेष्ट ऊंचे पद पर पहुंचने का उन्हें अधिकार था; यूरोपीय अध्यापकों ने बड़ी उदार भाषा में उन्हें प्रशंसापत्र दिए थे। यूरोप में रहते समय किसी बदनाम राजनीतिक कार्यकर्ता के साथ उनकी भेंट-मुलाकात हुई थी, इसीसे देश लौट आने के बाद उनके सभी कामों में बाधा पड़ने लगी। अन्त में इंग्लैंड के किसी प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य की सिफारिश से उन्हें अध्यापन का काम मिला भी तो एक अयोग्य अधिकारी के नीचे। जहां अयोग्यता होती है वहां प्रखर ईर्ष्या भी होती है, इसलिए उनके वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य में ऊपर से पद-पद पर बाधा पड़ने लगी। अन्त में एक ऐसी जगह उनकी बदली कर दी गई जहां लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) ही नहीं थी। उन्होंने समझ लिया कि इस देश में उनके लिए जीवन के सर्वोच्च अध्यवसाय का रास्ता बंद है। औरों की तरह एक ही रास्ते पर अध्यापन का पहिया घुमाते हुए चलना और थोड़ी-सी पेंशन के सहारे जीवन समाप्त कर देना उन्हें किसी तरह स्वीकार न हुआ। वे निश्चित रूप से जानते थे कि दूसरे किसी देश में जाकर सम्मान प्राप्त करने की शक्ति उनमें खूब है।

एक दिन इन्द्रनाथ ने जर्मन-फ्रांसीसी भाषाएं सिखाने के लिए एक प्राइवेट क्लास खोल दिया। उसके साथ ही बॉटनी (उद्भिज-विज्ञान) और जियोलोजी (भूतत्त्व-विज्ञान) लेकर कालेज में पढ़ने-वाले छात्रों की सहायता करने की ज़िम्मेदारी भी अपने ऊपर उठा ली। क्रमशः इस क्षुद्र अनुष्ठान के गुप्त तहखाने से एक गुप्त साधना की जटिल जड़ें जेलखाने के आंगन से होती बहुत दूर तक फैल गईं।

इन्द्रनाथ ने पूछा—"एला, तुम यहां?"

एला ने कहा—"आपने उन लोगों को मेरे घर जाने को मना र दिया है इसलिए लड़कों ने मुझे यहीं बुलाया है।"

"यह खबर मुझे पहले ही मिल चुकी है। खबर मिलते ही मैंने न्हें ज़रूरी काम से दूसरी जगह लगा दिया है। उन सबकी ओर से ही 'एपालोजी (क्षमा) मांगने आ गया हूं। बिल भी चुका दूंगा।"

"आपने मेरा निमंत्रण क्यों भंग कर दिया?"

"लड़कों के साथ तुम्हारा सहृदयतापूर्ण सम्पर्क है, उसे दबा देने लिए। तुम्हारे नाम से एक लेख अखबार में भेज दिया है, कल म देखोगी।"

"आपने लिखा है? आपकी कलम छिपी नहीं रह सकती। लोग से नकली ही समझेंगे।"

"बायें हाथ से कच्ची लिखावट लिखी है; उसमें कोई बुद्धि की ात नहीं है, सदुपदेश-भर है।"

"किस तरह का?"

"उसमें तुमने लिखा है—लड़के असमय जगकर देश को मारे डाल हे हैं। बंगाल की स्त्रियों से तुमने करुणापूर्ण अपील की है कि वे न अभागों का दिमाग ठंडा करें। उसमें तुमने कहा है—दूर से त्र्सना करने से कानों तक वह न पहुंचेगी। उनके बीच में जाना ोगा, जहां उनके नशे का अड्डा है वहां पहुंचना होगा। शासकों को न्देह हो तो होने दो। उसमें तुम कहती हो—'तुम लोग मां-जाति ी हो, उनका दण्ड अपने ऊपर लेकर भी उनको बचा सकीं तो ुम्हारा मरना सार्थक होगा।' आजकल हम सदा ही कहा करते हैं क तुम मां-जाति की हो—इन्हीं बातों को नमकीन जल (आंसू) में भगोकर उस लेख में रख दिया है। मातृवत्सल पाठकों की आंखों ं आंसू आ जाएंगे। यदि तुम पुरुष होतीं तो इसके बाद तुम्हारे लिए ायबहादुर की उपाधि पाना असम्भव न होता।"

"मैं यह तो नहीं कह सकती कि जो कुछ आपने लिखा है वह री बात हो ही नहीं सकती। इन सर्वनाशी लड़कों को मैं प्यार

करती हूं—ऐसे लड़के और हैं कहां ? एक दिन मैंने उनके साथ कालेज में पढ़ा है। शुरू में वे मेरे नाम के साथ बोर्ड पर न जाने क्या-क्या लिखा करते थे। बाद में मुझे 'छोटी इलायची' कहकर चिल्लाते और फिर भलेमानुसों की तरह आकाश की ओर देखने लगते थे। फोर्थ ईयर (चतुर्थ वर्ष) में मेरे साथ, मेरी एक सखी इन्द्राणी पढ़ती थी—उसे वे कहते थे 'बड़ी इलायची'। वह बेचारी देखने में कुछ लम्बी थी ; रंग भी गोरा नहीं था। इन सब छोटी-मोटी शरारतों को लेकर अनेक लड़कियां नाराज़ हो उठती थीं, किन्तु मैं लड़कों का ही पक्ष लेती थी। मैं जानती थी कि हम लोगों को देखने का उन्हें अभ्यास नहीं है इसीलिए हम लोगों के प्रति उनका आचरण अशिष्ट हो जाता है—कभी-कभी भद्दा भी हो उठता है, किन्तु यह सब उनके लिए स्वाभाविक नहीं है। जब वे हमसे मिलने-जुलने के अभ्यस्त हो गए तो उनका स्वर अपने-आप स्वाभाविक हो गया। तब छोटी इलायची बन गई इलायची दीदी। बीच-बीच में किसी-किसीके स्वर में मधुर रस भी आया है—और आएगा क्यों नहीं ? किन्तु मुझे उसके कारण कभी भय नहीं हुआ। मैंने अपने अनुभव से देखा है कि लड़कों के साथ व्यवहार करना बहुत ही आसान है—यदि लड़कियां जानकर या अजाने उनके साथ शिकार का खेल खेलने की कोशिश न करें। उसके बाद एक-एक को जांचकर देखा कि जो उनमें सबसे अच्छे थे, जिनमें नीचता नहीं थी, जिनमें स्त्रियों के प्रति पुरुषोचित सम्मान का भाव था···"

"अर्थात् कलकत्ते के रसिक लड़कों की तरह जिनमें रस भर नहीं उठा था···"

"हां, वे ही मृत्यु-दूत के पीछे-पीछे प्राण हाथ में लिए दौड़ने लगे। उनमें प्रायः सभी मेरी तरह ही गंवार थे। वे ही यदि मरने को दौड़ पड़ें, तो मैं नहीं चाहती घर के कोने में बंद रहकर जीवित रहना। किन्तु देखिए मास्टर महाशय, मैं सच्ची बात ही कहूंगी। जितने ही दिन बीतते जाते हैं, हमारा उद्देश्य उद्देश्य न होकर नशा होता जा

रहा है। हमारे काम करने की पद्धति अपनी बेसुरी धुन में विचार-शक्ति के, विवेक के बाहर चली जा रही है। यह सब अच्छा नहीं लगता। न जाने किस अंधशक्ति के सामने ऐसे लड़कों की बलि दी जा रही है ! मेरी तो छाती फटती है।"

"वत्से ! यह जो धिक्कार है यही तो कुरुक्षेत्र की भूमिका है। अर्जुन के मन में भी क्षोभ उठा था। जब डाक्टरी सीखने गया तो प्रारम्भ में मुर्दे को चीरते समय प्रायः घृणा से मूछित हो जाया करता था। यह घृणा ही घृणित है। शक्ति के प्रारम्भ में निष्ठुर की साधना करनी पड़ती है, अन्त में शायद क्षमा हो। तुम लोग कहा करती हो—लड़कियां मां-जाति की हैं, किन्तु यह बात कुछ गौरव की नहीं है। मां तो स्वतः प्रकृति ने अपने हाथ से ही बना रखी है। जन्तु-जानवर भी इससे बच नहीं पाए हैं। उससे बड़ी बात यह है कि तुम लोग शक्तिरूपिणी हो,—दया-माया के दलदल को पार कर सख्त जमीन पर जाकर इसे प्रमाणित करना होगा। शक्ति दो, पुरुष को शक्ति दो।"

"ये सब बड़ी-बड़ी बातें कहकर आप हम लोगों को बहका रहे हैं। हम जो कुछ असल में हैं, उससे आप बहुत ज़्यादा दावा कर रहे हैं। इतना सहन नहीं होगा।"

"दावे के बल से ही दावा सच्चा होता है। तुम लोगों को हम जो कुछ समझेंगे, तुम वही बनती रहोगी। तुम लोग भी हमपर उसी तरह विश्वास करो, जिससे हमारी साधना सत्य हो।"

"आपसे बातें कहलाना मुझे प्रिय है, किन्तु इस समय उसकी ज़रूरत नहीं। इस समय मैं स्वयं कुछ कहना चाहती हूं।"

"अच्छा। ऐसा हो तो यहां नहीं, चलो उस पीछेवाले कमरे में।"

पर्दा-लगे आधे अंधेरे कमरे में वे चले गए। वहां एक पुराना टेबल था। उसके दोनों ओर दो बेंचें पड़ी थीं। दीवार पर एक बड़े साइज़ का भारतवर्ष का नक्शा टंगा था।

"आपने एक अन्याय किया है—यह बात कहे बिना मुझसे रहा

नहीं जाता।"

इन्द्रनाथ से इस तरह केवल एला ही कह सकती है। किन्तु उसके लिए भी यह कहना आसान नहीं था, इसीलिए गले पर अस्वाभाविक ज़ोर देकर कहना पड़ा।

इन्द्रनाथ के लिए सिर्फ इतना ही कहना कि वे देखने में अच्छे लगते हैं, पूरा कथन नहीं होगा। उनके चेहरे में एक कठोर आकर्षण-शक्ति है। जैसे उनके सुदूर अन्तर में एक वज्र बंधा हो, जिसका गर्जन कभी सुनाई नहीं पड़ता पर जिसकी निष्ठुर चमक बीच-बीच में बाहर दिखाई पड़ जाती है। मुख के भाव में मंजी-घिसी भद्रता है, सान दी हुई छुरी की तरह। कड़ी बात कहने में कोई रुकावट नहीं है पर हंस के बोलते हैं; कण्ठस्वर गुस्से में भी ऊंचा नहीं चढ़ता; क्रोध हंसते-हंसते ही प्रकट होता है। जितनी सफाई से मर्यादा की रक्षा होती है उतनी वह कभी नहीं भूलते, उसकी सीमा लांघते भी नहीं। सिर के बाल बहुत ज़्यादा छोटे हैं इसलिए न सजाने-संवारने पर भी उनके गड़बड़ होने की कोई आशंका नहीं है। मुंह का रंग ज़रा लाली लिये हुए बादामी है। भौंहों के ऊपर चौड़ा ललाट तना हुआ है; चितवन में कठिन बुद्धि की तीक्ष्णता है; ओठों पर अटल संकल्प और प्रभुत्व का गौरव है। अत्यन्त दुःसाध्य प्रकार का दावा वे अनायास कर सकते हैं; जानते हैं कि वह दावा आसानी से अस्वीकार न किया जाएगा। कोई जानता है कि उनकी बुद्धि असामान्य है, कोई जानता है कि उनकी शक्ति अलौकिक है। इसके अलावा किसीमें असीम श्रद्धा है तो किसीमें उनके प्रति अकारण भय है।

इन्द्रनाथ ने हंसते हुए कहा—"कैसा अन्याय?"

"आपने उमा को ब्याह करने का हुक्म दिया है, पर वह तो ब्याह करना नहीं चाहती।"

"किसने कहा कि नहीं चाहती?"

"वह स्वयं ही कहती है।"

"हो सकता है कि वह स्वयं ठीक से समझती न हो अथवा खुद ठीक-ठीक न बताती हो।"

"उसने आपके सामने ही प्रतिज्ञा की थी कि ब्याह नहीं करेगी।"

"तब वह सत्य थी ; इस समय वह सत्य नहीं है। मुंह की बात से सत्य की सृष्टि नहीं की जा सकती। प्रतिज्ञा तो उमा स्वयं ही तोड़ देती, मैंने तुड़वाकर उसे अपराध करने से बचा लिया।"

"प्रतिज्ञा पूरी करने न करने की जिम्मेदारी उसीकी है, चाहे उसे तोड़ती, चाहे अपराध करती।"

"तोड़ते-तोड़ते आस-पास तोड़ने का ज्यादा विस्तार कर देती ; उससे हम सबका नुकसान होता।"

"किन्तु वह तो बड़ा रो-धो रही है।"

"तो फिर रोने-धोने की अवधि और न बढ़ने दूंगा—कल-परसों के अन्दर ही ब्याह कर दिया जाएगा।"

"कल-परसों के बाद भी तो उसका समस्त जीवन पड़ा हुआ है।"

"लड़कियों का ब्याह के पहले का रोना 'प्रभाते मेघडंबरम् है।'"

"आप निष्ठुर हैं।"

"क्योंकि जो विधाता मनुष्य को प्यार करते हैं वे निष्ठुर हैं ; जन्तु को ही आश्रय देते हैं।"

"आप जानते हैं कि उमा सुकुमार को प्यार करती है।"

"इसीलिए उसे अलग करना चाहता हूं।"

"प्रेम का दण्ड ?"

"प्रेम के दण्ड का कोई अर्थ नहीं। ऐसे तो वसंत (चेचक) रोग का होना भी एक दण्ड है, किन्तु गोटी निकल आने पर रोगी को घर से हटाकर अस्पताल भेज देना ही अच्छा होता है।"

"सुकुमार के साथ ब्याह कर देने से ही तो ऐसा हो सकता है।"

"सुकुमार ने तो कोई अपराध किया नहीं। वैसे लड़के हममें और हैं कितने ?"

"वह यदि खुद ही उमा से ब्याह करने को राजी हो जाए ?"

"असंभव नहीं है। इसीलिए तो इतनी जल्दी है। उसके जैसे ऊंची कोटि के पुरुष के मन में विभ्रम उत्पन्न कर देना लड़कियों के लिए सहज है; सुकुमार के सामने दो-चार आंसू टपकाकर उसके सौजन्य को आश्रय प्रमाणित किया जा सकता है। सुनकर गुस्सा हो रही हो?"

"गुस्सा क्यों करने लगी! मेरी जानकारी में ऐसी घटनाओं की कमी नहीं है जिनमें स्त्रियों के कौशल से बढ़ावा मिला है किन्तु उसकी ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी है पुरुष को। किन्तु अब सत्य के अनुरोध से न्याय का विचार करने का समय आ गया है। मैं ऐसा ही किया करती हूं, इसीलिए तो लड़कियां मुझे देख नहीं सकतीं। जिसके साथ उमा के ब्याह का हुक्म हुआ है, उस भोगीलाल का क्या मत है?"

"उस निष्कण्टक भलेमानुष को मतामत जैसी कोई बीमारी नहीं है। बंगाली कन्या मात्र को वह विधाता की अपूर्व सृष्टि के रूप में जानता है। उसके जैसे मुग्ध स्वभाव के लड़के को दल से निकाल बाहर करने की ही ज़रूरत है। कूड़ा-कर्कट फेंक देने के लिए ब्याह ही सबसे अच्छी टोकरी है।"

"इन सब उत्पातों की आशंका होने पर भी आपने स्त्री-पुरुषों को एकत्र क्यों किया?"

"जिस संन्यासी ने शरीर पर भस्म लपेट रखी है और जिसने भस्मकुण्ड में अपनी प्रवृत्तियों को जलाकर राख कर दिया है, उन कायरों से काम नहीं होगा, इसलिए। जब देखूंगा कि हमारे दल का कोई अग्नि-उपासक असावधानी से अपने ही अन्दर आग लगाना चाहता है तो उसे हटा दूंगा। हमारा अग्निकाण्ड देश-भर में फैला हुआ है; बुझे मन से वह नहीं जल सकता और उन लोगों के ज़रिये भी कुछ नहीं हो सकता जो आग को दबाना नहीं जानते।"

गंभीर मुंह लिए एला बैठी रही। कुछ देर बाद आंखें नीची करके बोली—"तब आप मुझे छोड़ दीजिए।"

"इतनी हानि करने को क्यों कहती हो?"

"आप नहीं जानते ।"

"किसने कहा है कि नहीं जानता । एक दिन देखा कि तुम्हारे खद्दर में जरा-सा रंग लग गया है । मालूम हो गया कि हृदय में अरुणोदय हुआ है । समझ सकता हूं कि किसी एक के पांवों की आहट सुनने की आशा में तुम्हारे कान लगे हुए हैं । गत शुक्रवार को जब तुम्हारे घर गया था तो तुमने सोचा था कि कोई और है । देखा कि तुम्हें अपना मन संभालने में कुछ समय लगा । तुम लजाओ नहीं, इसमें कुछ भी असंगत नहीं है ।"

कानों की लोलकियां लाल हो उठीं ; एला चुप बैठी रही ।

इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम किसीको प्यार करती हो, यही तो ? तुम्हारा मन तो जड़ पाषाण का बना नहीं है । जिसे प्यार करती हो, उसे भी जानता हूं । पश्चात्ताप का तो इसमें कोई कारण नहीं दिखाई देता ।"

"आपने कहा था कि एकाग्रचित्त होकर काम करना होगा । सब दशाओं में वह संभव नहीं जान पड़ता ।"

"सबके लिए नहीं । किन्तु प्रेम के भारी भार से तुम अपने को डुबा दोगी, ऐसी लड़की तुम नहीं हो ।"

"किन्तु···"

"इसमें किन्तु की कोई बात नहीं है । तुम किसी भी हालत में छुटकारा नहीं पा सकतीं ।"

"आप तो जानते हैं कि मैं आप लोगों के किसी काम नहीं आती ।"

"तुमसे मैं काम नहीं चाहता, काम की सब बातें तुमसे कहता भी नहीं । तुम खुद कैसे समझ सकती हो कि तुम्हारे हाथ का रक्त-चंदन का टीका लड़कों के मन में कैसी आग जला देता है । उसे छोड़कर केवल सूखे वेतन पर काम कराने से तुमसे पूरा काम नहीं मिल सकता । हम कामिनी-कांचन के त्यागी नहीं हैं । जहां कांचन का प्रभाव है वहां मैं कांचन की अवज्ञा नहीं करता ; जहां कामिनी का

प्रभाव है वहां कामिनी को वेदी पर बिठाया है।"

"आपसे झूठ नहीं बोलूंगी, मैं समझ चुकी हूं कि मेरा प्यार मेरे अन्य सब प्रेम को पीछे छोड़े जा रहा है।"

"कोई भय नहीं ; खूब प्रेम करो। केवल 'मां, मां' के स्वर में जो देश को पुकारा करते हैं वे सदा बच्चे ही बने रहेंगे। देश बूढ़े बच्चों की मां नहीं है, देश अर्धनारीश्वर है—स्त्री-पुरुष के मिलन में ही उसकी उपलब्धि है। उस मिलन को गृहस्थी के पिंजड़े में बांधकर निस्तेज न करो।"

"किन्तु तब आप उमा···"

"उमा ! कालू ! वे प्रेम के शुष्क रुद्र रूप हैं, वे इसे कैसे सह सकेंगे ? जिस दाम्पत्य के घाट पर उनकी सम्पूर्ण साधना का अंत्येष्टि-संस्कार होगा, समय रहते मैं उन दोनों को वहीं भेज रहा हूं। जाने दो उस बात को। सुना है कि तुम्हारे घर में डकैत घुसा था परसों रात को।"

"हां, घुसा तो था।"

"तुम्हारी 'जुगुत्सू'-शिक्षा का कोई स्वाद उसे मिला ?"

"मेरा विश्वास है कि डकैत की कलाई तोड़ दी है।"

"मन के अन्दर आह-ऊह कुछ नहीं हुआ ?"

"होता, किन्तु डर था कि वह मेरा अपमान न कर दे। वह अगर यंत्रणा में हार मान लेता तो मैं अन्त तक मरोड़ न दे सकती।"

"कुछ पहचान सकीं कि कौन था ?"

"अंधेरे में देख नहीं सकी।"

"यदि देख पातीं तो जान लेतीं कि वह अनादि था।"

"अरे, यह कैसी बात ! हमारा अनादि ! वह तो अभी लड़का ही है।"

"मैंने ही उसे भेजा था।"

"आपने ? ऐसा काम क्यों किया ?"

"तुम्हारी भी परीक्षा हो गई, उसकी भी।"

"कैसे निष्ठुर हैं !"

"मैं नीचे के कमरे में मौजूद था, उसी समय हड्डी ठीक कर दी। म अपने को व्यथा-कातर समझती हो। मैंने समझना चाहा था कि पत्ति के सामने कातरता स्वाभाविक नहीं है। उस दिन तुमसे करी के बच्चे को पिस्तौल से मारने के लिए कहा था। तुम बोलीं क तुमसे किसी तरह नहीं हो सकता। तुम्हारी फुफेरी बहिन ने हादुरी के साथ गोली मार दी। जब देखा कि जानवर का पांव ंग हो जाने के कारण वह गिर पड़ा है तो कठोरता का आभास देने लिए हा-हा करके हंस पड़ी—हिस्टीरिया की हंसी। उस दिन रात ो उसे नींद नहीं आई। किन्तु यदि तुम्हें बाघ खाने आता और ुम डरपोक न होतीं तो तुरन्त उसे मार देतीं, ज़रा भी न हिच-कचातीं। हम उसी बाघ को मन के सामने स्पष्ट देखते हैं, उसने या-माया का विसर्जन कर दिया है, नहीं तो अपने को 'सेंटीमेंटल' (भावुक) कहकर घृणा करता। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही बात समझाई थी। निर्दय न होंगे, किन्तु कर्तव्य के समय निर्मम होना ही ड़ेगा। समझीं ?"

"समझ गई।"

"यदि समझ गई हो तो एक सवाल करूंगा। तुम अतीन को ्यार करती हो ?"

कोई जवाब न देकर एला चुप बैठी रही।

"यदि वह कभी हम सबको खतरे में डाल दे, तो क्या तुम उसे अपने हाथ से मार नहीं सकतीं ?"

"उनके बारे में यह बात इतनी असंभव है कि 'हां' कहने में मुझे हिचक नहीं।"

"यदि संभव ही हो तो ?"

"मुंह से चाहे जो कह दूं, किन्तु क्या मैं अपने को पूरी तरह जानती हूं ?"

"जानना ही होगा अपने को। समस्त निदारुण संभावनाओं की प्रतिदिन कल्पना करके अपने को तैयार रखना होगा।"

"मैं निश्चित रूप से कहती हूं कि आपने मुझे चुनने में भूल की है।"

"मैं निश्चित जानता हूं कि मैंने भूल नहीं की।"

"मास्टर साहब ! मैं आपके पांव पड़ती हूं, अतीन को छोड़ दीजिए।"

"मैं छुटकारा देनेवाला कौन हूं ? वह अपने ही संकल्प के बंधन में बंधा है। उसके मन से दुविधा कभी नहीं मिटेगी, रुचि पर प्रतिक्षण चोट लगती रहेगी फिर भी उसका आत्मसम्मान उसे अंत तक ले जाएगा।"

"आदमी को पहचानने में क्या आप कभी भूल नहीं करते ?"

"करता हूं। बहुत-से आदमी ऐसे हैं जिनके स्वभाव में ही दो तरह की बुनावट होती है। दोनों में कोई मेल नहीं होता, फिर भी दोनों सत्य हैं। वे खुद भी अपने प्रति भूल करते हैं।"

भारी गले से आवाज़ आई—"क्या है भाई साहब ?"

"कन्हाई ? आओ, आओ।"

कन्हाई गुप्त ने कमरे में प्रवेश किया। वह ठिगना, मोटा, अधेड़ व्यक्ति है। कई हफ्ते से दाढ़ी-मूंछ बनाने की फ़ुर्सत नहीं मिली ; सारा चेहरा कंटीला हो गया है। सामने का माथा गंजा हो गया है। धोती के ऊपर मोटी खादी की चादर है जो धोबी की कृपा से वंचित है ; कुर्ता है ही नहीं। दोनों हाथ शरीर के हिसाब से छोटे हैं ; देखकर मन में आता है कि वे सदा काम करने को तैयार रहते हैं। दल के लोगों का यथासंभव पेट भरने के लिए ही कन्हाई की यह चाय की दुकान है।

कन्हाई ने अपने स्वाभाविक दबे और बैठे गले से कहा—"भाई साहब, तुम्हारी प्रसिद्धि है कम बोलने के लिए ; तुम्हें तो मुनि कहना पड़ेगा। पर जान पड़ता है, एला दीदी तुम्हारी उस प्रसिद्धि

को मिट्टी में मिलाकर छोड़ेंगी।"

इन्द्रनाथ ने हंसकर कहा—"बात न करने की ही साधना है हम लोगों की। पर नियम की रक्षा करने के लिए ही व्यतिक्रम की, उसके उल्लंघन की आवश्यकता पड़ती है। यह लड़की खुद बात नहीं करती, दूसरों को बात करने का अवसर देती है। वाचा का बहुमूल्य आतिथ्य है यह।"

"तुम क्या कहते हो भाई साहब? एला बात नहीं करतीं! तुम्हारे सामने चुप हैं किन्तु जहां मुंह खोलती हैं वहां फिर वाणी की बाढ़ आ जाती है। मैं तो पकी बुद्धि का आदमी हूं, फिर भी भनक पाते ही बहीखाता फेंककर आड़ से इनकी बातें सुनने आ जाता हूं। इस समय ज़रा मेरी ओर ध्यान देना पड़ेगा। एला दीदी के समान तो मेरा कण्ठ नहीं है किन्तु थोड़े में जो कुछ कहूंगा वह मर्म में प्रवेश कर जाएगा।"

एला झट उठ खड़ी हुई। इन्द्रनाथ ने कहा—"जाने के पहले एक बात तुम्हें जनाए जाता हूं। दल के लोगों के सामने मैं तुम्हारी निन्दा किया करता हूं। यहां तक कि ऐसी बात भी मैंने कही है कि शायद किसी दिन तुम्हें इस तरह हटाना पड़े कि कोई चिह्न भी बाकी न रह जाए। कहा है कि अतीन को तुम फोड़े ले रही हो और उसके फूटने से और भी कुछ फूट सकता है।"

"कहते-कहते बात को सच क्यों किए डालते हैं? क्या पता, शायद यहां के साथ मेरा कुछ असामञ्जस्य हो।"

"होने पर भी मैं तुमपर सन्देह नहीं करता। फिर भी उनके सामने तुम्हारी बुराई ही करता हूं। लोगों में अफवाह है कि तुम्हारा कोई शत्रु नहीं, किन्तु देखता हूं कि तुम्हारे भक्तों के बंगलादेशी मन मेरी निन्दा पर विश्वास करने के लिए लालायित हो उठते हैं। ये निन्दाविलासी लोग निष्ठाहीन हैं। इनके नाम मैं खाते में नोट कर लेता हूं। कितने ही पन्ने भर गए हैं।"

"मास्टर साहब, उन्हें निन्दा से प्रेम है इसीलिए निन्दा करते

हैं—मेरे ऊपर क्रोध होने के कारण नहीं।"

"अजातशत्रु का नाम सुना है एला। पर ये सब जातशत्रु हैं। इनकी अकारण शत्रुता जन्मकाल से ही इस देश की उन्नति के सभी प्रयत्नों को धूल में मिलाती आ रही है।"

"भाई साहब, आज यहीं तक। विषय को अगले दिन समाप्त होने के लिए रहने दो। एला दीदी, तुम्हारे चाय का निमंत्रण तोड़ने के मूल में यदि गुप्त रूप से मैं भी रहा होऊं तो तुम कुछ खयाल मत करना। मेरी चाय की दुकान के ताला लगने का समय आ पहुंचा। जान पड़ता है कि दो-तीन सौ मील पर कहीं जाकर इस बार नाई की दुकान खोलनी पड़ेगी। इस बीच मैंने अलकानन्दा तैल के पांच पीपे तैयार करके रख लिए हैं। यह तैल महादेव की जटा को निचोड़कर बनाया गया है। बेटी, एक प्रमाणपत्र दे देना, लिखना—अलका तैल सिर पर लगाने के बाद से जूड़ा बांधना एक समस्या बन गया है, लम्बी होती हुई चोटी को संभालना स्वयं दशभुजा देवी के लिए मुश्किल हो गया है।"

जाते समय एला दरवाजे के पास आकर मुंह फिराकर बोली—"मास्टर साहब, याद रही आपकी बात, तैयार रहूंगी। शायद मुझे हटाने का दिन भी आएगा, चुपचाप हट जाऊंगी।"

एला के चले जाने पर इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम चंचल क्यों दिखाई पड़ रहे हो कन्हाई?"

"सम्प्रति रास्ते के किनारे मेरी उस सामने की टेबल पर तीन-चार गुंडे लड़के बैठे वीररस का प्रचार कर रहे थे। आवाज से जान पड़ता था कि मानो वे सांड के पोते ही हों। मैंने सेडीशन का चार्ज लगाकर उनके नाम की थाने में रिपोर्ट कर दी है।"

"अन्दाज़ लगाने में भूल तो नहीं की कन्हाई?"

"गलती से सन्देह कर लेना अच्छा, किन्तु सन्देह न करके गलती करना सांघातिक है। बिल्कुल मूर्ख ही हुए तो कोई उन्हें बचा नहीं सकता, और अगर असल दुश्मन हुए तो उन्हें मार ही कौन सकता

? मेरी रिपोर्ट से अच्छा ही होगा। उस दिन वे शैतान बहुत ऊंचे कण्ठ से ब्रिटिश शासन को खून की नदी में बहा देने का प्रस्ताव कर रहे थे। निश्चय ही 'अभयचरण रक्षित' उनकी उपाधि है। एक दिन शाम को कैश बाक्स लेकर हिसाब मिलाने बैठा था। अचानक सिर में धूल भरे, फटे कपड़े पहने एक लड़का चला आया। चुपके-चुपके बोला—'पचीस रुपये चाहिए, दीनाजपुर जाना है।' अपने मथुरा मामा का नाम भी बताया। मैंने तड़ाक से उठकर और चिल्लाकर कहा—'शैतान! तेरी इतनी हिम्मत! अभी पकड़वा दूंगा पुलिस से।'—अपने पास समय नहीं था, नहीं तो प्रहसन का अन्त कर देता, उसे थाने पकड़ ले जाता। तुम्हारे लड़के जो पास के कमरे में बैठे चाय पी रहे थे, वे मुझपर आग हो उठे, उसे देने के लिए चंदा उठाने की चेष्टा करके देखा कि सबके पाकेट से बटोरने पर तेरह आने से ज्यादा फण्ड नहीं एकत्र हो सका। वह लड़का मेरी शक्ल देखते ही चम्पत हो गया।"

"तब तो देख रहा हूं कि तुम्हारे ढक्कन को फोड़कर गंध बाहर निकलने लगी है—मक्खियों का आना शुरू हो गया।"

"इसमें क्या सन्देह है? भाई साहब, इसी समय अपने चेलों को दूर-दूर फैला दो—उनमें से एक भी बेकार न रहने पावे। 'ओस्टेन्सिबल मीन्स ऑव लिवलिहुड' (जीविका का प्रत्यक्ष साधन) प्रत्येक के लिए चाहिए ही।"

"चाहिए तो निश्चय ही। किन्तु उपाय भी सोचा है?"

"बहुत दिनों से। हाथ खाली नहीं था, स्वयं नहीं कर सका। सोच रखा है, उपकरण भी इकट्ठे कर लिए हैं धीरे-धीरे। माधव कविराज बेचता है ज्वरनाशिनी बटी, जिसमें बारह आने कुनैन है। उससे उसे लेकर लेबिल बदल दूंगा—नया नाम रखूंगा—मलेरियादि गुटिका, कुनैन के साथ और भी अनेक झूठी बातें जोड़ दूंगा। अतुलसेन को लगा दिया जाएगा 'कैन्वेसिंग बैग' हाथ में लिए उस गुटिका का प्रचार करने में। तुम्हारा निवारण फर्स्ट क्लास एम०

एस-सी० की शर्म छोड़कर भैरवी कवच लेकर बैठ जाएगा—उस कवच में सप्त धातु के अतिरिक्त नवीन रसायन की और भी कई नवीन धातुओं के नाम जोड़कर प्राचीन ऋषियों के साथ आधुनिक विज्ञान का अभूतपूर्व सम्मिलन किया जा सकता है। जगबन्धु संस्कृत श्लोकों के ऊपर व्याकरण का जादू चलाकर उच्च स्वर से प्रमाणित करता रहेगा कि चाणक्य का जन्म हुआ था बंगाल देश के नेत्रकोना स्थान में ; मेरा जन्मस्थान भी इसी सबडिविज़न में है। इसे लेकर सांघातिक वाद-विवाद, खंडन-मंडन साहित्य में चलने दो ; अन्त में चाणक्य-जयंती की जाएगी मेरे ही परदादा के खंडहर में। तुम्हारा कैम्बेली डाक्टर तारिणी सांडेल शीतला माता के मन्दिर के निर्माण के लिए चंदा वसूल करके मुहल्ले को अस्थिर किए रहेगा। असल बात यह है कि तुम्हारे सबसे ज़्यादा ऊंचे माथेवाले ग्रेनेडियर लड़कों के दल को कुछ दिनों के लिए फालतू व्यवसाय से ढक देना होगा—भले ही कोई उन्हें बेवकूफ कहता रहे, कोई चतुर व्यापारी।"

इन्द्रनाथ ने हंसकर कहा—"तुम्हारी बातें सुनकर मेरी भी इच्छा होती है कि किसी व्यवसाय में लग जाऊं। और किसी बात के लिए नहीं, केवल दिवालिया होने की कार्य-प्रणाली और 'साइकालोजी' (मनोविज्ञान) का अध्ययन करने के लिए।"

कन्हाई ने कहा—"भाई साहब, तुम जिस व्यवसाय में लगे हुए हो वह आज हो चाहे कल, दिवालिया होकर तो रहेगा ही। जो दिवालिया होते हैं वे न समझने के कारण होते हों, ऐसा नहीं है ; असल में वे नुकसान का रास्ता किसी भी तरह छोड़ नहीं पाते, इसीलिए होते हैं—दिवालिया होने की मरणान्तक खिंचावट एक 'सबलाइम'—सुन्दर—आकर्षण है। उस विषय पर इस समय आलोचना करने से कुछ लाभ नहीं। एक सवाल मेरे मन में है, वही तुमसे पूछ लूं। एला जैसी सुन्दरी सदा दिखाई नहीं पड़ती, यह बात मानते हो या नहीं ?"

"मानता क्यों नहीं।"

"तब उसे तुमने अपने बीच रखा किस साहस से है ?"

"कन्हाई, इतने दिनों में तुम्हें मुझको समझ लेना चाहिए था। जो आग से डरता है वह आग का व्यवहार नहीं कर सकता। अपने काम में मैं आग को दूर रखना नहीं चाहता।"

"अर्थात् उससे काम चौपट हो या न हो, तुम 'केयर' (पर्वाह) नहीं करते।"

"सृष्टिकर्ता आग से खेलता है। निश्चित परिणाम का हिसाब करके सृष्टि का काम नहीं चलता ; उसका यह विराट् प्रवर्त्तन अनिश्चित की प्रत्याशा से ही है। ठंडा माल-मसाला लेकर, अंगूठे से दबा-दबाकर जो पुतले गढ़े जाते हैं, उनके बाज़ार-दर को देखकर अपना काम चलाने का मेरा मन नहीं है। यह जो अतीन लड़का आया है एला से खिंचकर उसके अन्दर विपत्ति लाने का डाइनामाइट (बम) मौजूद है—इसीलिए उसके प्रति मेरी इतनी उत्सुकता है।"

"भाई साहब, तुम्हारी इस भीषण लेबोरेटरी में हम तो झाड़न कंधे पर डाले बेयरा का काम करने-भर के लिए हैं। पागल होकर यदि कोई गैस अथवा कोई यंत्र फट-फुटकर छिटक पड़े तो हमारी खोपड़ी चूर-चूर हो जाएगी। इसे लेकर गर्व करने योग्य शक्ति हमारी खोपड़ी में नहीं है।"

"इस्तीफा देकर विदा क्यों नहीं हो जाते ?"

"फल का लोभ जो है हम लोगों में—तुम्हें भले ही न हो। तुम्हारे ही दलालों के मुंह से एक दिन सुना था कि 'एलेक्जायर आफ़ लाइफ़' (जीवनामृत) शायद मिल सकता है। तुम्हारे इस सर्वनाशी रिसर्च (अनुसंधान) के चक्कर में हम गरीब जो आ पड़े हैं वह निश्चित आशा के ही आकर्षण से, अनिश्चित की मोहिनी से नहीं। तुम इसे देख रहे हो जुआरी की आंखों से, हम इसे देखते हैं व्यवसायी की सादी आंखों से। अन्त में खतौनी के खाते में आग लगा-

कर हम लोगों से मज़ाक न करना भाई साहब। उसके प्रत्येक पैसे के सिक्के में हमारी छाती का खून है।"

"मेरे मन में कोई अन्धविश्वास नहीं है कन्हाई। हार-जीत के बारे में सोचना तो एकदम से ही छोड़ दिया है। प्रकाण्ड कर्म-क्षेत्र में मैं हूं कर्ता, इसी रूप में मेरा कुछ अर्थ है, मैं कुछ हूं—यहां हार भी बड़ी है, जीत भी बड़ी है। उन लोगों ने चारों ओर के दरवाज़े बन्द करके मुझे छोटा करना चाहा था, पर मरते-मरते मैं प्रमाणित कर जाना चाहता हूं कि मैं बड़ा हूं। मेरी पुकार सुनकर कितने अच्छे मनुष्य मृत्यु की अवज्ञा करके चारों ओर से आ जुटे हैं, सो तो तुम देख ही रहे हो कन्हाई। क्यों ? मैं पुकार सकता हूं इसीलिए तो। यह बात मैं अच्छी तरह जानकर और जनाकर जाऊंगा। उसके बाद जो होना होगा, होगा। तुम भी तो किसी दिन बाहर से सामान्य ही दिखाई पड़ते थे, किन्तु तुम्हारे असामान्य को मैंने प्रकाशित किया है। तुम लोगों को रस में डुबा दिया है ; मनुष्य को लेकर यह मेरी रसायन की साधना है। और ज़्यादा क्या चाहिए ? ऐतिहासिक महाकाव्य की समाप्ति पराजय के श्मशान में भी हो सकती है। किन्तु है तो वह महाकाव्य ही। गुलामी से दमित इस खण्डित मनुष्यत्व के देश में मौत की तरह मरना भी एक सुयोग है।"

"भाई साहब, मुझ जैसे अकल्पनाशील 'प्रैक्टिकल' (व्यावहारिक) आदमी को भी तुम खींच लाए इस घोरतर पागलपन के ताण्डवनृत्य-मंच पर। जब सोचता हूं तो, इस रहस्य का अन्त ही नहीं पाता।"

"तुम लोगों पर मेरा इतना जोर इसीलिए है कि मैं कंगाल की तरह कुछ भी नहीं चाहता। माया में भुलाकर या लोभ देकर किसीको नहीं बुलाया। पुकारता हूं असाध्य के बीच में, फल के लिए नहीं, पौरुष को प्रमाणित करने के लिए। मेरा स्वभाव 'इम्पर्सनल' (अवैयक्तिक) है। जो अनिवार्य है उसे मैं अक्षुण्ण मन से स्वीकार कर ले सकता हूं। इतिहास तो पढ़ा ही है, देखा है कि कितने बड़े-बड़े साम्राज्य गौरव के अभ्रभेदी शिखर तक उठ गए थे ; आज वे धूल

में मिल गए हैं—उनके हिसाब के खाते में कहीं कोई भारी कर्ज़ लिखा हुआ था जिसे वे चुका नहीं सके। और यह देश, यह हमारा ही देश है, जो सौभाग्य के चिरस्वत्त्व को लेकर इतिहास की ऊंची गद्दी पर बैठा रहेगा और पराभव के समस्त कारणों पर सिंदूर-चंदन लगाकर और घंटा बजाकर पूजा करता रहेगा। मूर्ख की भांति ऐसा प्यार किससे करूंगा ? मैंने तो ऐसा कभी नहीं किया। वैज्ञानिक का निर्मोही मन लेकर मान लेता हूं कि जिसकी मृत्यु आ गई है वह मरेगा ही।"

"तब ?"

"तब ! देश की चरम दुरवस्था मेरा मस्तक नीचा नहीं कर सकती। मैं उससे बहुत ऊंचा हूं—मरने के सारे लक्षण देखकर भी आत्मा में अवसाद न आने दूंगा।"

"और हम सब ?"

"तुम सब क्या बच्चे हो ? बीच महानद में जिस जहाज़ का पेंदा जगह-जगह से फट गया है, रो-पीटकर, मंत्र पढ़कर, ईश्वर की दुहाई देकर, क्या उसे बचाया जा सकता है ?"

"न बचाया जा सके तो ?"

"तब क्या ? जान-सुनकर तुम कई लोगों ने उस डूबते जहाज पर तूफान के बीच सांघातिक पाल चढ़ा दिया है ; तुम लोगों का कलेजा नहीं कांपा। ऐसे जितने लोगों को पाया है, डूबते-डूबते भी उन्हींको लेकर मेरी जीत है। रसातल जाने के लिए जो देश अन्ध-भाव से प्रस्तुत है उसीके मस्तूल पर तुम लोग अन्त तक जयध्वजा फहरा रहे हो ; न तो तुमने झूठी आशा की है, न कंगलापन किया है ; न निराशा में हाय-हाय करके रोये हो। जब जहाज़ के पेंदे में पानी भर गया है तब भी तुमने पतवार नहीं छोड़ी। पतवार छोड़ना ही कायरता है। बस, तुम लोगों को पाकर ही हमारा काम हो गया है। उसके बाद ? कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

"तुम जो कह रहे हो उसमें एक खास बात छूट गई मालूम

पड़ती है।"

"क्या बात ?"

"तुम्हारे मन में क्या क्रोध भी नहीं है ? इतने 'इम्पर्सनल' (निर्वैयक्तिक) हो तुम ?"

"क्रोध किसपर ?"

"अंग्रेज़ों पर।"

"जो जवान शराब पीकर आंखें लाल किए बिना लड़ ही नहीं सकता, उस गंवार की मैं अवज्ञा करता हूं। क्रोधपूर्वक कर्तव्य करने में अकर्तव्य होने की ही अधिक संभावना रहती है।"

"ऐसा भले ही हो, किन्तु क्रोध का कारण होने पर भी क्रोध न करना अमानवीय है।"

"समस्त यूरोप के साथ मेरा परिचय है, मैं अंग्रेज़ों को भी जानता हूं। पश्चिम की जितनी भी जातियां हैं उन सबमें वे सबसे बड़ी जाति के लोग हैं। यह बात नहीं है कि शत्रु को वे ताड़ना देकर मार नहीं सकते, परन्तु पूरी तरह मारते नहीं, वैसा करने में लज्जित होते हैं। उनमें जो बड़े हैं उन्हींके सामने जवाब देने में वे सबसे ज़्यादा डरते हैं। वे अपने को भुलावा देते हैं और उन्हें भी। उनपर जितना क्रोध करने से फुल स्टीम बनाया जा सकता है उतना क्रोध करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

"तुम अद्भुत हो।"

"मार की चोट से वे हमारे मेरुदण्ड को सदा के लिए पूरी तरह तोड़कर रख दे सकते थे पर वे वैसा नहीं कर सके। मैं उनके मनुष्यत्व को शाबाशी देता हूं। पराये देश पर शासन करते-करते वह मनुष्यत्व नष्ट होता जाता है, इसीसे उनके अन्दर मृत्यु की अवस्था पैदा होती जा रही है। विदेश का इतना बोझ और किसी जाति के सिर पर नहीं है, इसीसे उनका स्वभाव नष्ट होता जा रहा है।"

"इसे वे समझेंगे। किन्तु तुम जो इस अध्यवसाय को प्रायः अहेतुक बनाए डाल रहे हो, मुझे वह ज्यादती मालूम पड़ती है।"

"तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। मैं अन्याय नहीं करूंगा, उन्मत्त हीं हूंगा, देश को देवी कहकर मां-मां पुकारकर आंसू नहीं बहाऊंगा ; ब भी काम करूंगा, यही मेरा बल है।"

"शत्रु को यदि शत्रु कहकर उससे द्वेष न करोगे तो उसके विरुद्ध ाथ चलाओगे कैसे ?"

"रास्ते में पड़े हुए पत्थरों पर जैसे हथियार चलाते हैं, उसी रह अप्रमत्त बुद्धि से। वे अच्छे हैं या बुरे, यह तर्क का विषय नहीं । उनका शासन विदेशी शासन है, उसके कारण अन्दर ही अन्दर मारी आत्मा का लोप हो गया है, इस अस्वाभाविक स्थिति को दूर रने की चेष्टा करके मैं अपने मानव-स्वभाव को स्वीकार कर हा हूं।"

"परन्तु सफलता के बारे में तुम्हें निश्चित आशा नहीं है।"

"न रहे, तो भी मैं अपने स्वभाव का अपमान न करूंगा—ामने चाहे मृत्यु ही निश्चित रूप से आ खड़ी हो तब भी नहीं। राभव की आशंका है, इसीलिए उसके विरुद्ध खड़े होकर अपने म्मान की रक्षा करनी होगी। मैं तो समझता हूं कि आज यही हम ोगों का अन्तिम कर्तव्य है।"

"वे आ रहे हैं रक्त-गंगा बहानेवाले नकली भगीरथ। ज़रा न्हें चाय पिला लाऊं। उसीके साथ स्पष्ट भाषा में खबर भी दे ाऊंगा कि पुलिस में सब बातों की रिपोर्ट कर दी गई है। तुम्हारे ल के मूर्ख कहीं मुझे 'लिंच' (जिंदा जलाना) न कर दें।"

दूसरा अध्याय

एला एक आरामकुर्सी पर बैठी है; पीठ की ओर तकिया लगा हुआ है। पांव पर पांव हैं। काठ की तख्ती गोद में रखे देशबंधु की मूर्ति-अंकित कापी में कुछ लिख रही है। दिन डूबने में ज़्यादा देर नहीं है, किन्तु अब तक बाल बिखर रहे हैं। शरीर में बैंगनी रंगवाली खद्दर की साड़ी है; इस रंग में मैल छिप जाती है इसीलिए एकान्त में उसे पहन लिया जाता है। हाथ में लाल रंग की शंख की दो चूड़ियां पड़ी हैं; गले में एक सोने का हार है। हाथीदांत जैसा गोरा शरीर है; गठी काठी है; देखने से जान पड़ता है कि उम्र बहुत कम है किन्तु मुंह पर परिणत बुद्धि की गंभीरता है। खद्दर की हरे रंग की चादर से ढकी हुई एक संकरी लोहे की खाट कमरे में एक ओर दीवार से लगी पड़ी हुई है। नारायणी स्कूल की बुनी हुई शतरंजी फर्श पर बिछी हुई है। एक ओर लिखने की छोटी-सी टेबल है जिसपर ब्लाटिंग पैड पड़ा हुआ है, उसीपर एक ओर कलम-पेंसिल से सजा हुआ दवातदान रखा है; दूसरी तरफ पीतल की कटोरी में गंधराज के फूल रखे हैं। दीवार पर किसी दूरवर्ती काल में बने फोटोग्राफ की प्रेतात्मा झूल रही है, जिसकी क्षीण पीत रेखाएं मिट-सी चली हैं। अंधेरा होता जा रहा है; रोशनी जलाने का समय हो गया है। एला उठने-उठने को कर ही रही थी कि इतने में खद्दर का पर्दा हटाकर अतीन्द्र ने तूफानी हवा के झोंके की तरह कमरे में प्रवेश करते ही पुकारा—"एली!"

एला खुशी से चौंककर बोली—"असभ्य, बिना जनाए हुए इस कमरे में आने का साहस करते हो ?"

एला के पांवों के पास धप् से ज़मीन पर बैठकर यतीन्द्र ने कहा—"ज़िन्दगी बहुत छोटी है और कायदे-कानून बहुत लम्बे-चौड़े हैं ; नियम में बंधकर चलने योग्य परमायु थी सनातन युग में मांधाता की ; कलियुग में उसका टोटा पड़ गया है।"

"मैंने तो अभी कपड़े भी नहीं बदले हैं।"

"अच्छा तो है। ऐसा होने पर मेरे साथ खप जाओगी। तुम अगर रथ पर बैठी रहोगी और मैं पैदल रहूंगा, तो ऐसा द्वन्द्व मनु महाराज के मत से अधर्म होगा। किसी ज़माने में मैं था विशुद्ध भद्रपुरुष—पर वह खोल तो तुम्हींने उतार फेंकी है। अब मैं इस वेश-भूषा में कैसा लगता हूं ?"

"कोश में इसे वेश-भूषा नहीं कहा जाता।"

"तब क्या कहा जाता है ?"

"उसके लिए खोजने पर भी शब्द नहीं पा रही हूं। जान पड़ता है, भाषा में कोई शब्द ही नहीं है। कुर्ते के सामने यह जो टेढ़ी-मेढ़ी सिलाई है, यह क्या तुम्हारे अपने हाथ की सिलाई का विशद विज्ञापन है ?"

"भाग्य की चोट दारुण होने पर भी मैं उसे छाती से चिपटा लेता हूं, उसीका यह परिचय है। इस कुर्ते को दर्ज़ी के हाथ में देने का साहस नहीं होता, उसे भी तो अपने सम्मान का कुछ ख्याल होगा।"

"मुझे क्यों नहीं दिया ?"

"तुमने नवयुग के सुधार का भार तो ले ही रखा है, फिर उसके ऊपर पुराने कुर्ते के सुधार का भार ?"

"इसे सहन करने की ऐसी क्या ज़रूरत थी ?"

"जिस ज़रूरत के कारण भले लोग अपनी स्त्री को सहन करते हैं।"

"इसका अर्थ ?"

"इसका अर्थ है एक से ज़्यादा न होना।"

"यह तुम क्या कह रहे हो अंतू ? क्या इस दुनिया में तुम्हारे पास यही एक कुर्ता है ?"

"बढ़ाकर कहना अन्याय है, इसलिए कम करके ही कहा है। पहले श्रीयुक्त अतीन्द्र बाबू के पास तरह-तरह के बहुत-से कपड़े थे। ऐसे ही समय देश में बाढ़ आ गई। तुमने अपने भाषण में कहा—'इस आंसू-भरे दुर्दिन में (याद है आंसू-भरा यह विशेषण ?) जब बहुतेरे स्त्री-पुरुषों के पास अपनी लाज बचाने-भर को कपड़े नहीं हैं, तब जिनके पास आवश्यकता से अधिक कपड़े हैं उन्हें शर्म आनी चाहिए।' बड़े ढंग से कहा था तुमने। उस समय भी तुम्हारे ऊपर खुले-खुले हंसने का साहस नहीं था मुझमें। मन ही मन हंसा था। मैं निश्चित रूप से जानता था कि तुम्हारे बक्स में तुम्हारी आवश्यकता से कहीं ज़्यादा कपड़े हैं, किन्तु स्त्रियों के पास यदि पचास रंगों के पचास कपड़े हों तो वे पचासों ही उनके लिए आवश्यक हैं। उन दिनों देश-हितैषिणियों में होड़ चल रही थी कि कौन कितना दान एकत्र कर सकती हैं। लाकर रख दिया अपने कपड़ों का ट्रंक तुम्हारे चरणों में। खुशी से तालियां बज उठीं।"

"यह कैसी बात ? मैं क्या जानती थी कि तुम इस तरह अपने को निःशेष कर दोगे ?"

"आश्चर्य क्यों करती हो ? दुःसाध्य क्षति-सहन की शक्ति इस शरीर में इतने प्रबल वेग से किसने संचार कर दी थी ? संग्रह का भार यदि अपने गणेश मजूमदार पर होता तो उससे मेरे कपड़ों के बक्स की बहुत कम हानि होती।"

"छिः छिः ! अन्तू, तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ?"

"दुःख मत करो। बिलकुल ही शोचनीय स्थिति नहीं है, दो कुर्ते रंगवाकर रख दिए हैं रोज़ की ज़रूरत के लिए, बारी-बारी से धोकर काम चल जाएगा। और दो हैं आपद्धर्म के लिए तहाकर रखे हुए।

अगर किसी दिन इस संदेह की दुनिया में अपने को भद्रवंश का प्रमाणित करने की जरूरत पड़ी, तो उन दोनों पर धोबी-दर्जी का सर्टिफिकेट है ही।"

"सृष्टिकर्ता का सर्टिफिकेट तो इस चेहरे पर मौजूद ही है—गवाह बुलाने की ज़रूरत नहीं होगी तुम्हें।"

"स्तुति! नारी के दरबार में प्रशंसा की अत्युक्ति तो सदा पुरुषों के ही अधिकार में रही है, तुम उसे उलट देना चाहती हो?"

"हां, चाहती हूं। प्रचार करना चाहती हूं कि आधुनिक काल में स्त्रियों के अधिकार बढ़ते जा रहे हैं। तब पुरुष के विषय में भी सत्य कहने में उन्हें बाधा नहीं होनी चाहिए। नवीन साहित्य में देखती हूं कि बंगाली स्त्रियां अपनी ही प्रशंसा में मुखर हैं; देवी की प्रतिमा गढ़ने का कुम्हार का काम उन्होंने स्वयं अपने ऊपर ले लिया है। वे स्वजाति की गुण-गरिमा पर साहित्यिक रंग चढ़ा रही हैं। वह भी उनके अपने अंग-राग में शामिल है—अपने ही हाथ का तैयार किया हुआ, विधाता के हाथ का नहीं। मुझे तो इसपर लज्जा आती है। अब चलो बैठक में।"

"इस कमरे में भी तो बैठने की जगह है। मैं तो अकेले ही हूं, कोई विराट सभा तो हूं नहीं।"

"अच्छा तो बताओ, ज़रूरी बात क्या है?"

"हठात् कविता का एक पद याद आ गया है, पर वह कहां पढ़ा है, यह याद नहीं आ रहा है। सवेरे से खोजता फिर रहा हूं, अब तुमसे पूछने आया हूं।"

"बड़ा जरूरी काम है! अच्छा, बोलो।"

"ज़रा सोचकर बताओ, किसकी रचना है—

'तेरे नयनों में देखा था, अपना सत्यानाश।'"

"किसी नामी कवि की कविता तो नहीं है।"

"तुम्हें पहले की सुनी हुई नहीं मालूम पड़ती?"

"ज़रा-ज़रा किसी परिचित कण्ठ का आभास होता है। दूसरी लाइन कहां गई ?"

"मुझे तो विश्वास था कि दूसरी लाइन तुम्हें अपने-आप याद आ जाएगी।"

"तुम्हारे मुंह से अगर एक बार सुन लूं तो निश्चय ही याद आ जाएगी।"

"तब सुनो—

'प्रहर-शेष में अरुण ज्योति से, रंजित था मधुमास।
तेरे नयनों में देखा था, अपना सत्यानाश।'"

अतीन के माथे पर थपकी देकर एला बोली—"आजकल तुमने क्या पागलपन शुरू कर दिया है ?"

"चैत मास की उस कुबेला से ही मेरा पागलपन शुरू हो गया है। जो सब दिन पराकाष्ठा पर पहुंचने के पहले ही समाप्त हो जाते हैं वे छायामूर्ति धारण करके कल्पलोक के दिगन्त में घूमा करते हैं। तुम्हारे साथ मेरा मिलन उसी मरीचिका की सुहागरात में होगा। आज वहीं के लिए तुम्हें बुलाने आया हूं—काम की हानि करूंगा।"

काठ की तख्ती और कापी मेज़ के ऊपर फेंककर एला बोली—"भले पड़ा रहे मेरा काम। पर रोशनी तो कर दूं।"

"नहीं, रहने दो—प्रकाश प्रत्यक्ष को प्रमाणित करता है। दीप-हीन पथ से अप्रत्यक्ष की ओर चलो। चार साल से कुछ कम हुए, स्टीमर से मुकामा घाट पर (गंगा के पार) जा रहा था। तब तक मैं अपनी पैतृक सम्पत्ति के खण्डित छोर को पकड़े हुए था; वह ऋण के गड्ढे से भरा था। उस समय तक मेरे शरीर और मन पर शौकीनी का रंग चढ़ा हुआ था—दिवालिये दिनान्त के मेघ की तरह। शरीर में रेशमी कुर्ता डाटे और कंधे पर तहाई हुई मूंगे की चादर डाले फर्स्ट क्लास डेक के ऊपर बेंत की आरामकुर्सी में बैठा हुआ था। फेंके हुए अखबार के पन्ने फर-फर करते कभी इधर कभी उधर उड़

रहे थे। देखने में बड़ा मजा ग्रा रहा था; मुझे लगा मानो मूर्त अफवाहों का विशृंखल नृत्य हो। तुम थीं सामान्य लोगों के दल में,—कमर बांधे हुए डेक की पैसेंजर। हठात् मेरे पीछे की अगोचरता में से तुम तेजी से निकलकर मेरे सामने ग्रा गईं। ग्राज भी आंखों पर चढ़ी हुई है तुम्हारी वह 'ब्राउन' (भूरे) रंग की साड़ी। जूड़े की दोनों ग्रोर पिन से ग्रटका साड़ी का पल्ला मुंह के दोनों तरफ हवा से फूल रहा था। बड़ी चेष्टा से ग्रसंकोच का नाट्य करते हुए तुमने पूछा था—'ग्राप खद्दर क्यों नहीं पहनते?' याद है?"

"बहुत ग्रच्छी तरह। ग्रपने मन की तस्वीर से तुम बातें करा सकते हो, मेरी तस्वीर तो गूंगी है।"

"मैं ग्राज उस दिन की बातें दोहराऊंगा, तुम्हें सुनना पड़ेगा।"

"सुनूंगी क्यों नहीं? वह दिन तो मेरे नये जीवन की टेक है, बार-बार मेरा मन वहीं लौट जाना चाहता है।"

"तुम्हारे गले का स्वर सुनते ही मेरा सारा शरीर चौंक उठा, वह स्वर मेरे मन में ज्योति-सुषमा की भांति ग्राया, मानो ग्राकाश से कोई रूपवान पंछी ग्राकर मेरे चिरदिन का जो कुछ था उसे उठा ले गया हो। ग्रपरिचित स्त्री की उस ग्रचिन्तनीय स्पर्धा पर यदि क्रोध कर सकता तो शायद उस दिन पार लगानेवाली नाव मुझे ऐसे ग्रधर स्थान पर न पहुंचा देती—भद्र लोगों के बीच ही ग्रन्त तक जीवन बीतने की राह न टूटती। किन्तु मन भीगी दियासलाई जैसा हो गया था, उसमें क्रोध की ग्राग न जल सकी। मेरे स्वभाव का सबसे मुख्य गुण है ग्रहंकार, इसीसे तुरन्त मन में यह विचार ग्राया कि यदि यह स्त्री विशेष भाव से मुझे पसन्द न करती तो इस विशेष रूप में मुझे धमकी देने न ग्राती; खद्दर-प्रचार तो एक बहाना है। बोलो, सच्ची बात थी न?"

"हां, हां। कितनी बार तो कह चुकी हूं। बहुत देर से डेक के एक कोने में बैठी तुम्हें निहार-निहारकर देख रही थी। यह भी

भूल गई थी कि किसी दूसरे का इधर ध्यान तो नहीं है। जीवन में वह मेरा एक सबसे ज़्यादा आश्चर्यकारी और चौंकानेवाला परिचय था। मन बोला—'कहां से आया यह बहुत दूर की जाति का आदमी, अपने चारों ओर की नाप के अनुसार तो बना नहीं, जैसे शैवाल के बीच कोई शतदल कमल खिल गया हो। उसी समय मन ही मन प्रण कर लिया था कि इस दुर्बल मनुष्य को खींच लाना होगा, केवल अपने ही पास नहीं, हम सबके पास।"

"मेरे भाग्य से तुम्हारी वह एकवचन की चितवन बहुवचन की चितवन के नीचे दब गई।"

"मेरे लिए कोई उपाय न था अंतू। द्रौपदी को देखने के पहले ही कुंती ने कह दिया था, तुम सब मिलकर बांट लेना। तुम्हारे आने के पहले ही शपथ लेकर देश का आदेश स्वीकार कर चुकी थी ; कहा था कि मैं केवल अपने लिए कुछ भी न रखूंगी। देश के निकट मैं वाग्दत्ता हूं।"

"अधार्मिक है तुम्हारा यह प्रण-ग्रहण, इस प्रण की रक्षा करके तुम रोज स्वधर्म के प्रति विद्रोह कर रही हो। प्रण यदि टूट जाता तभी सत्य की रक्षा होती। जो लोभ पवित्र या अन्तर्यामी की आदेशवाणी है, उसे तुमने दल के पांवों से रौंद डाला है। इसका दण्ड तुम्हें भुगतना ही होगा।"

"अंतू, दण्ड की तो कोई सीमा नहीं है ; वह दिन-रात मुझे मार रहा है। जो आश्चर्यकारी सौभाग्य सम्पूर्ण साधनाओं के परे है, जो देवता का अयाचित दान है, वह मेरे सामने आया, तब भी मैं उसे ले न सकी। हृदय में गांठ बंध चुकी है ; इतना बड़ा दुःसह वैधव्य किसी स्त्री के भाग्य में न आवे। मैं एक अभिमंत्रित घेरे के भीतर थी किन्तु तुम्हें देखते ही मन उत्सुक हो उठा ; बोला—टूट जाए यह सब घेरा। कैसे यह विप्लव घटित हो गया, किसी दिन भी इसे समझ नहीं पाई। यह कहना तो झूठा होगा कि इससे पहले कभी मन विचलित ही नहीं हुआ, किन्तु चंचलता पर विजय पाकर;

अपने शक्ति के गर्व में खुश थी। विजय करने का वह गर्व अब नहीं रहा, मेरी वह इच्छा ही खो गई है। बाहर की बात छोड़ दो, भीतर की ओर ध्यान से देखो, मैं हार गई हूं। तुम वीर हो, मैं तुम्हारी बन्दिनी हूं।"

"मैं भी हार गया हूं अपनी उस बन्दिनी के सामने। हार का अभी अन्त नहीं हुआ है, प्रतिक्षण ही युद्ध हो रहा है और प्रतिक्षण ही मैं हार रहा हूं।"

"अंतू, फर्स्ट क्लास के डेक पर जब अपूर्व आविर्भाव की भांति तुम मुझे दूर से दिखाई पड़े थे, तब भी मैं यही जानती थी कि थर्ड क्लास का टिकट हम लोगों के आधुनिक आभिजात्य का एक उज्ज्वल निदर्शन है। बाद में तुम रेलगाड़ी के सेकेण्ड क्लास में सवार हुए। मेरा शरीर-मन सब उसी क्लास की ओर खिंच गया। यहां तक कि मन में एक चालाकी सूझी कि ट्रेन छूटने के अन्तिम क्षण में तुम्हारे डिब्बे में चढ़ जाऊं—कह दूंगी कि जल्दी में यह भूल हो गई। काव्यशास्त्र में स्त्रियां ही अभिसार करने निकलती हैं; संसार की विधि से बाधा होने के कारण ही कवियों ने वैसी करुणा की है। ऊहापोह करनेवाले मन की जितनी सब बिखरी हुई इच्छाएं हैं, वे अन्दर की अंधेरी कोठरी में भटकती हुई सिर धुनती हैं दीवारों पर। उनकी बात को स्त्रियां पर्दे के बाहर किसी तरह स्वीकार करना नहीं चाहतीं, पर तुमने मुझसे स्वीकार करा लिया है।"

"क्यों स्वीकार किया ?"

"नारी जाति का अहंकार तोड़कर केवल स्वीकृति ही तो तुम्हें दे सकी हूं, और तो कुछ दे नहीं सकी।"

अचानक अतीन एला का हाथ दबाते हुए बोल उठा—"क्यों नहीं दे सकीं ? मुझे ग्रहण करने में क्या बाधा थी ? समाज ? जाति-भेद ?"

"छिः, छिः ! ऐसी बात मन में भी न लाना। बाधा बाहर की नहीं थी, भीतर की थी।"

"यथेष्ट प्रेम नहीं था ?"

"इस यथेष्ट का कोई अर्थ नहीं है अंतू। जो शक्ति हाथ से पर्वत को न ठल सकी हो, दुर्बल कहकर उसकी निन्दा न करो। शपथ लेकर यह सत्य ग्रहण किया था कि विवाह न करूंगी। प्रण न किए होती तो भी शायद विवाह न हो सकता।"

"क्यों नहीं होता ?"

"गुस्सा न करो अंतू। प्यार करने के कारण ही तो संकोच है। मैं निःस्व हूं, तुम्हें क्या दे सकती हूं ?"

"साफ-साफ बताओ।"

"बहुत बार बता चुकी हूं।"

"फिर बताओ। आज सब कहना-सुनना समाप्त कर देना चाहता हूं। फिर कभी न पूछूंगा।"

बाहर से आवाज़ आई—"दीदी रानी !"

"क्या है रे अखिल, आ जा न अन्दर।"

लड़के की उम्र सोलह या अठारह की होगी। हठी, शरारत-भरा प्रियदर्शन चेहरा है। बड़े-बड़े उलझे हुए घुंघराले बाल हैं। गेहुंआ रंग है। दोनों चंचल नयन दप-दप चमक रहे हैं। खाकी रंग की कमीज़ पहने हुए है। उसी रंग का कमर तक कोट है, जिसका एक बटन खुला हुआ है, जिससे छाती दिखाई पड़ रही है। कमीज़ की दोनों ओर की जेबें अनेक प्रकार की सम्पत्ति से फूल उठी हैं; सीने के पासवाली जेब में हिरन के सींग की मढ़ी विचित्र फलों-वाली एक छुरी है। कभी वह खेलने की नाव और कभी एयरोप्लेन (हवाई जहाज) का नमूना बनाता है। इस समय वह मल्लिक कम्पनी की आयुर्वेदिक वाटिका में जल खींचनेवाला एक यंत्र देख आया है; बिस्कुट के टिन इत्यादि अनेक फालतू चीज़ों को जोड़-जाड़कर उसीकी नकल बनाने की चेष्टा में लगा है। अंगूठा काट लिया है, उसपर पट्टी बांध रखी है। एला पूछती है तो मानो सुनता ही नहीं। एला इस मातृ-पितृहीन लड़के की दूर की रिश्तेदार है;

वह उसके अनेक प्रकार के उत्पात सहन करती रहती है। वह न जाने कहां से एक सस्ती जाति का बन्दर खरीद लाया है जो भंडार में घुसकर चोरी कर लेने में दक्ष है। एला के छोटे-से परिवार पर यह जानवर बड़ा भारी अत्याचार है।

कमरे में प्रवेश करते ही अखिल ने शर्माते हुए पर तेज़ी से आगे बढ़कर तथा पांव छूकर एला को प्रणाम किया। एला समझ गई कि इस प्रणाम का कुछ विशेष तात्पर्य है, क्योंकि ऐसी श्रद्धावृत्ति अखिल के स्वभाव में है नहीं।

एला ने कहा—"अपने अंतू दादा को प्रणाम नहीं करेगा?"

कोई जवाब न देकर अखिल अतीन की ओर पीठ फिराकर खड़ा हो गया। अतीन ज़ोर से हंस पड़ा। अखिल की पीठ थपथपाकर बोला—"शाबाश! यदि सिर झुकाना ही हो तो एक ही देवता के चरणों में झुकाना चाहिए। उसी एकेश्वरी के आगे मैं भी सिर झुकाता हूं। अब प्रसाद के बंटवारे को लेकर तकरार न करो भाई, बहुत कुछ अब भी बचा हुआ है।"

एला ने अखिल से कहा—"बोल, तुझे क्या कहना है?"

अखिल ने कहा—"कल मेरी मां का मृत्यु-दिवस है।"

"वही तो। मैं तो एकदम भूल ही गई थी। किसीको श्राद्ध के लिए निमंत्रित करना चाहता है?"

"किसीको नहीं।"

"तब क्या चाहता है?"

"तीन दिन के लिए पढ़ाई से छुट्टी चाहता हूं।"

"क्या करेगा छुट्टी लेकर?"

"खरगोश के लिए खांचा (पिंजड़ा) बनाऊंगा।"

"खरगोश तो तेरा एक भी नहीं बचा, तब पिंजड़ा किसके लिए बनाएगा?"

अतीन हंसकर बोला—"खरगोश तो कल्पना करते ही हो सकते हैं, असल बात तो पिंजड़ा बनाना ही है। मनुष्य अनित्य है, आता

है और जाता है, किन्तु सदा के लिए पिंजड़ा बनाने का भार भगवान मनु से लेकर उनके आधुनिक अवतार तक सबने ले रखा है। इस काम का उन्हें प्रबल शौक है।"

"अच्छा, जा तेरी छुट्टी है।"

कोई बात न करके अखिल तुरन्त भाग गया।

अतीन ने कहा—"इसे मैं बस में नहीं कर सका। मेरी पुरानी सम्पत्ति की झाड़न-पोंछन में एक रिस्टवाच बच गई थी। आजकल के लड़कों के लिए ऐसी चीज़ राजा के राज्य से कम नहीं है। एक दिन उसे मैंने देना चाहा तो सिर हिलाता हुआ चला गया। इसीसे समझा जा सकता है कि हमारा झगड़ा 'कम्यूनल' (साम्प्रदायिक) हो चला है ; यह अंतू-अखिल 'रायट' (दंगा) का लक्षण है।"

"लड़कों से हिल-मिल जाने में तुम्हारी जोड़ नहीं है, तब इस बंदर के आगे तुमने हार क्यों मान ली ?"

"क्योंकि बीच में तीसरा पक्ष जो है, नहीं, हम दोनों तो हरि-हर बन जाते। पर यह बात छोड़ो। अभी यह बताओ कि तुम्हारी कैफियत क्या है ? मुझे क्यों दूर रखा ?"

"एक सीधी बात क्यों तुम भूल जाते हो कि मैं तुमसे उम्र में बड़ी हूं।"

"कारण यह कि मैं इस सीधी बात को नहीं भूल पाता कि तुम्हारी उम्र अट्ठाईस की है, जब मेरी उम्र अट्ठाईस साल कुछ महीने की है। इसे साबित करना बड़ा सरल है, क्योंकि दस्तावेज़ ताम्रपत्र पर ब्राह्मीलिपि में लिखा हुआ नहीं है।"

"मेरा अट्ठाईस तुम्हारे अट्ठाईस को बहुत दूर छोड़ गया है। तुम्हारे अट्ठाईस में यौवन की सब ज्योतिशिखाएं निर्धूम जल रही हैं। अब भी तुम्हारी खिड़कियां जिनकी ओर खुली हुई हैं वे अनागत हैं, वे अचिन्त्य हैं।"

"एली, मेरी बात तुम किसी तरह समझना नहीं चाहतीं, इसी-लिए समझ नहीं पातीं। दल के सामने भगवान के सत्य के विरुद्ध

त्य को ग्रहण किया है, इसीसे नाना प्रकार के तर्कों से मुझे भुला रही है ; अपने को भी। भुलाओ, किन्तु यह तो न कहो कि मेरे जीवन में अब भी अनागत, अचिंत्य दूर ही पड़ा हुआ है। वह आ गया है ; वह तुम हो। फिर भी आज भी वह अनागत है। तब क्या सदा ही उसकी ओर खिड़की खुली रहेगी ? और क्या उस शून्य के भीतर से केवल मेरा आर्त सुर बजता रहेगा—चाहता हूं, तुम्हें चाहता हूं, और दूसरी ओर से कोई उत्तर ही न आएगा ?"

"उत्तर नहीं आता, ऐसी बात तुम अकृतज्ञ कैसे कह रहे हो ? चाहती हूं, चाहती हूं, चाहती हूं, तुमसे ज़्यादा और कुछ नहीं चाहती इस जगत् में। जिस समय देखते ही शुभ दृष्टि सम्पूर्ण हो जाती, उस समय तो तुम मिले नहीं। तब भी कहती हूं कि भाग्य से ही मिलना नहीं हुआ।"

"क्यों ! वैसा होने में क्या क्षति होती ?"

"मेरा जीवन तो सार्थक हो जाता ; पर मेरे जीवन का मूल्य ही क्या है ? तुम किसी और की तरह जो नहीं हो ; तुम बड़े हो। दूर थी, इसीसे तो देख सकी तुम्हारे उस असामान्य प्रकाश को। मुझ सामान्य से तुम जकड़ जाओ, इस बात की कल्पना करने में भी मुझे भय लगता है। मेरे छोटे-से संसार में प्रतिदिन की तुच्छता को लेकर चलनेवाले आदमी बनोगे तुम ? इसे तुम्हें कैसे समझाऊं कि मैं कितने ऊपर सिर उठाकर तुम्हारा माथा देख पाती हूं। जो मामूली चीज़ें स्त्रियों के जीवन का संबल हैं उनके बोझ से तुम्हारे जैसे पुरुष के जीवन को दबा देने में जो कुण्ठित नहीं होतीं, ऐसी स्त्रियां भी शायद होंगी, पर उनके कारण जो ट्रेजेडी (दुःखांत घटना) होती है उसे भी मैं जानती हूं। आंखों के आगे देखा है कि लता के जाल ने पेड़ को बढ़ने नहीं दिया ; ऐसी स्त्रियां शायद समझती हैं कि उनके लिए जकड़े रहना ही यथेष्ट है।"

"एला, जो पाता है वही जानता है कि यथेष्ट किसे कहते हैं।"

"अपने को भुलाना नहीं चाहती अंतू। प्रकृति ने हम लोगों

(स्त्रियों) का सदा अपमान किया है। हम जगत् में केवल 'बायोलोजी' (जैविकी : जीवविज्ञान) के संकल्प का भार ढोने के लिए आई हैं। साथ ही लेती आई हैं जीवप्रकृति के अपने ही एकत्र किए हुए अस्त्र और मंत्र। उनका ठीक तरह से व्यवहार करना जानती होतीं तो बड़ी आसानी से अपना सिंहासन जीत लेतीं। साधना के क्षेत्र में पुरुष को अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करनी पड़ती है। वह श्रेष्ठता क्या है, भाग्य से इसे जानने का अवसर मुझे मिला है। पुरुष हम लोगों से बहुत बड़े हैं।"

"ऊंचाई में?"

"हां, ऊंचाई ही में तो। प्रकृति को लांघकर बड़ा होने का तोरण-द्वार उन्हींके माथे पर है। बुद्धि-उद्धि चाहे मुझे ज़्यादा न हो, किन्तु मैं उसी ऊंचाई की ओर देखकर इतनी नम्रता के साथ अपने को समर्पित कर सकी हूं।"

"किसी नीच ने उत्पात नहीं किया?"

"किया है। हमारी ओर खिंचकर जो बायोलोजी (जीवविज्ञान) के नीचे के स्तर तक उतर आते हैं, वे श्रीहीन होकर बिगड़ जाते हैं। व्यक्तिगत विशेष इच्छा या प्रयोजन न होने पर भी, नीचे खींच लाने के एक साधारण षड्यंत्र में हम सब स्त्रियों ने एक समान सहायता की है—सिंगार-पटार में, हाव-भाव में, बनावट की बातों में।"

"बेवकूफों को भुलाने के लिए?"

"हां जी, तुम लोग बेवकूफ तो हो ही। अत्यन्त सरल मंत्र से ही भुलावे में आ जाते हो। इसीसे तो हमारा यह घमंड है। हम बेवकूफों को प्यार करती हैं। फिर भी उनकी स्थूल मूर्खता के सर्वोच्च शिखर पर मैंने देखा है सूर्योदय; जब वे ज्योति लाये हैं तो उनकी पूजा की है। बहुत-से नीच, ओछे निंदक भी देखे हैं, कितने ही कृपण और कुत्सित लोगों को भी देखा है। उन सबको अलग करके और इन सब बातों को मानकर भी बहुत कुछ रह जाता है। उन बचे हुए लोगों को ही देखती हूं उज्ज्वल प्रकाश में। उनमें से बहुतों के नाम

ो किसीको याद न रह जाएंगे, तब भी वे बड़े हैं।"

"एली, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लज्जा आती है, मन में आता कि प्रतिवाद न करने से अच्छा नहीं लगेगा। पर अच्छा भी लगता । किन्तु सच्ची बात कहने में तुमसे हार नहीं मानूंगा। अपने देश पुरुषों में कापुरुषता के जो लक्षण मैं बचपन से ही देखता आया और जिन पर मैंने बार-बार विचार किया है, उसे आज मैं तुमसे हूंगा। मैंने अपनी जान-पहचान के परिवारों में और खुद अपने रिवार में भी, सास के असह्य अत्याचार की प्रधानता देखी है। सास अत्याचार की बात तो सदा से ही इस देश में प्रचलित है।"

"हां, वह तो मैं जानती हूं। अपने घर में भी देखा है, जो आदमी वयं दुर्बल है, वही दुर्बलों का यम है—उसके समान निष्ठुर कोई ो ही नहीं सकता।"

"एला, ऐसी बात कहकर तुम अपनी भावी सास की निन्दा की ूमिका मत बांधो। नववधुओं पर अमानुषिक अत्याचार की खबर ाय: सुनने में आती है; यह भी देखता हूं कि सासें ही उनकी धान नायिका हैं। किन्तु सासों को ऐसा अप्रतिहत—बेरोकटोक—त्याचार करने का अधिकार दिया किसने? उन्हीं माताओं के ड़कों ने ही तो? जिनमें अत्याचारिणी के विरुद्ध अपनी स्त्रियों की ज्जत रखने की शक्ति नहीं है ऐसे नाबालिगों की ब्याह करने की म्र क्या कभी होगी? जब होती है तब वे ही अपनी स्त्री के बच्चे न जाते हैं। जहां पुरुष का पौरुष दुर्बल है, वहां ही स्त्रियां नीचे तर पर उतरती हैं और अपने पतियों को भी उतारती हैं। आज तो खता हूं कि हमारे देश में जो बड़े हैं और जो कुछ करने का संकल्प रते हैं वे स्त्री का त्याग करना चाहते हैं—वे स्त्रैण कापुरुष स्त्रियों डरते हैं। इसीलिए तो कापुरुषों के इस देश में तुमने प्रण किया ब्याह न करने का, इसलिए कि कहीं कोई कोमल कच्चा मन तुम्हारे अयोचित प्रभाव से लचककर टेढ़ा न हो जाए। जो यथार्थ पुरुष वे यथार्थ स्त्री के बल से ही ऊंचा उठेंगे—हमारे खून में ही विधाता

के हाथ का लिखा यह आज्ञापत्र मौजूद है। जो विधाता के उस लेख को व्यर्थ कर देता है, वह पुरुष कहलाने लायक नहीं है। परीक्षा का भार तो तुम्हारे ही हाथ में था, परीक्षा करके मुझे देखा क्यों नहीं?"

"अंतू, तर्क मैं कर सकती हूं, परन्तु तुम्हारे साथ तर्क नहीं करूंगी। क्योंकि मैं जानती हूं कि तुम नितान्त क्षोभ में आकर ही ये सब कुयुक्तियां रख रहे हो। मेरे प्रण की बात तुम किसी तरह भूल नहीं पा रहे हो।"

"नहीं, नहीं भूल सकता। तुमने कह दिया न कि पुरुष महान हैं, और तुम्हें भय है कि स्त्रियां उन्हें छोटा कर देंगी। स्त्रियों को महान होने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। वे जो कुछ भी हैं उतने में ही सम्पूर्ण हैं। पर जो पुरुष महान नहीं है वह अभागा है, वह बड़ा नहीं हैं, वह असम्पूर्ण है; उसके लिए सृष्टिकर्ता भी लज्जित है।"

"अंतू, उस असम्पूर्ण के बीच भी हमें विधाता की इच्छा दिखाई पड़ती है—वह बड़ी इच्छा है।"

"एली, विधाता की इच्छा ही बड़ी है, यह तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि उनकी कल्पना भी किसी अंश में छोटी नहीं है। उस कल्पना की तूलिका के स्पर्श का जादू तो स्त्रियों की प्रकृति में ही लगा है। संसार के क्षेत्र में वे आर्टिस्ट की साधना ले आई हैं। और उन्होंने अपने तन-मन-प्राण से, रंग और स्वर से अनिर्वचनीय को प्रकट किया है। यह सहज शक्ति का कार्य है, इसीलिए सहज नहीं है। यह जो तुम्हारे शंख से चिकने कण्ठ में सोने का हार दिखाई दे रहा है इसके लिए तुम्हें नोट्स याद नहीं करने पड़े। ऐसी हत-भागिनी भी हैं जो अपने जीवन-लोक में रूप की सृष्टि में रस नहीं उत्पन्न कर सकीं, सोने का मोटा कड़ा पहनकर अपना गृहिणीपन प्रदर्शित करने में भले ही वे मुखर हों या फिर दासी होकर आंगन लीपकर जीवन बिता लें। संसार में ऐसे अपदार्थों की कोई गिनती नहीं है।"

"इसके लिए सृष्टिकर्ता को ही दोष दूंगी अंतू। उसने स्त्रियों को

ड़ाई करने की शक्ति क्यों नहीं दी ? वंचना करके क्यों उन्हें अपनी क्षा करनी पड़ती है ? जब मैंने यह बात पुस्तकों में पढ़ी कि पृथिवी र सबसे जघन्य 'स्पाई' (जासूस) का कार्य है और उसमें स्त्रियां ुरुषों से बाज़ी मार ले गई हैं तब विधाता के पांव में सिर पटककर कहा था कि सात जन्म में भी मैं लड़की होकर न पैदा होऊं। मैं त्री की आंख से पुरुष को देखती हूं, इसीसे सब कुछ के परे जाकर उनकी अच्छाई, उनके बड़प्पन को देख सकी हूं। जब देश के ारे में सोचती हूं तो उन सब सोने के टुकड़े जैसे लड़कों के बारे में ी सोचती हूं। मेरा देश तो उन्हींका है। वे यदि भूल करेंगे तो ूब बड़ा समझकर ही वह भूल करें गे। जब मैं सोचती हूं कि अपने ी घर में उन्हें जगह नहीं मिली तो मेरी छाती फटने लगती है। उन्हींकी मां हूं, उन्हींकी बहिन हूं, उन्हींकी लड़की हूं, यह ात याद करते ही मेरा हृदय भर आता है। अपने को सेविका कहने अंग्रेज़ी पढ़ी लड़कियों को कठिनाई होती है—किन्तु मेरा तो सम्पूर्ण ृदय पुकारकर कहता है—मैं सेविका हूं, तुम लोगों की सेवा करने ही मेरी सार्थकता है। हमारे प्रेम की सीमा इसी श्रद्धा में है।"

"अच्छा ही तो है ; तुम्हारी उस भक्ति, उस श्रद्धा के लिए कतने ही पुरुष हैं किन्तु मेरे लिए कौन है ? भक्ति न होने पर भी रा काम चल जाएगा। स्त्रियों के बारे में जो सूची तुमने दी है कि मां हैं, बहिन हैं, लड़की हैं, उसमें एक प्रधान बात तो छूट ही गई —शायद मेरे ही भाग्य का दोष है।"

"स्वयं तुम्हारी अपेक्षा मैं तुम्हें अधिक जानती हूं अंतू। हमारे ाड़-प्यार के छोटे-से पिंजड़े में दो दिनों में ही तुम्हारे डैने फड़फड़ा ठते। तृप्ति देने की जो सामान्य चीज़ें हमारे हाथ में हैं उनका ायोजन तुम्हारे लिए एक न एक दिन समाप्त ही हो जाता। तब म जान जाते कि मैं कितनी गरीब हूं। इसीलिए मैंने अपने समस्त वे हटा लिए हैं ; सम्पूर्ण मन से तुम्हें देश के हाथों में सौंप दिया । वहां तुम्हारी शक्ति के प्रसार के लिए स्थान की कमी नहीं

रहेगी।"

अतीन के दोनों नयन इस प्रकार जल उठे जैसे अत्यन्त व्यथा की जगह पर उसे चोट लग गई हो। कमरे में एक किनारे से दूसरे किनारे तक चक्कर लगा आया। उसके बाद एला के सामने आकर खड़ा हो गया और कहा—"तुमसे कठोर बात कहने का समय आ गया है। पूछता हूं, देश के हाथ हो या और किसीके हाथ, तुम मुझे सौंपनेवाली कौन होती हो? तुम दे सकती थीं, सौंप सकती थीं माधुर्य-दान को, वह जो तुम्हारी असल चीज है। उसे सेवा कहना चाहती हो तो सेवा कह लो, वरदान कहना चाहो तो वरदान कह लो। अहंकार करने दो तो मैं अहंकार करूंगा; और यदि नम्र होकर मुझे द्वार पर आने को कहो तो वह भी मैं कर सकता हूं। किन्तु तुम अपने दान के अधिकार को आज छोटा करके देख रही हो। नारी की महिमा से पूर्ण हृदय का जो ऐश्वर्य तुम दे सकती थीं उसे हटा लेकर तुम कह रही हो कि देश के हाथ सौंप दिया तुमको। नहीं दे सकतीं, नहीं दे सकतीं, कोई नहीं दे सकता। देश के बारे में एक हाथ से लेकर दूसरे हाथ में सौंपने की बात नहीं चल सकती।"

एला का मुंह पीला पड़ गया। बोली—"क्या कह रहे हो, ठीक समझ में नहीं आता।"

"मैं कह रहा हूं कि नारी को केन्द्र बनाकर जो माधुर्य-लोक फैला हुआ है, उसका प्रसार देखने में चाहे छोटा मालूम पड़ता हो किन्तु भीतर उसकी गहराई का अन्त नहीं है। वह पिंजड़ा नहीं है। किन्तु देश का नाम देकर जिसे मेरा निवास करार दिया था वह तुम्हारे दल का बनाया हुआ देश है—दूसरों के लिए चाहे जो हो, मेरे स्वभाव के लिए तो वही पिंजड़ा है। मेरी अपनी शक्ति उसके बीच सम्पूर्णतः प्रकाशित नहीं हो पाती, इसीलिए अस्वस्थ हो जाती है, उसमें विकृति आ जाती है और जो उसका अपना यथार्थ नहीं है उसे ही व्यक्त करने का पागलपन करती है। मुझे लज्जा होती है

परन्तु बाहर निकलने का दरवाज़ा बंद है। जानती नहीं हो पर मेरे डैने तो छिन्न-भिन्न हो गए हैं, दोनों पांवों में ठिठुरन की बेड़ी लग गई है। अपने देश में अपना स्थान ग्रहण करने की ज़िम्मेदारी अपनी ही शक्ति पर निर्भर है। वह शक्ति मुझमें थी। क्यों तुमने मुझे वह बात भुलवा दी ?"

भारी गले से एला ने कहा—"तुम भूले क्यों अंतू ?"

"भुलाने की तुम लोगों में अमोघ शक्ति है, नहीं तो भूलने के कारण मैं लज्जित होता। मैं हज़ार बार मानता हूं कि तुम मुझे भुला सकती हो। यदि न भूलता तो मैं अपने ही पौरुष पर सन्देह करता।"

"यदि यही बात है तो मेरी भर्त्सना क्यों कर रहे हो ?"

"क्यों कर रहा हूं, यही बात तो बता रहा हूं। भुलाकर मुझे वहीं ले चलो जहां तुम्हारा अपना संसार है, अपना अधिकार है। दल के लोगों की बात प्रतिध्वनि रूप में कही जाए तो कहना होगा कि तुम कुछ लोगों ने संसार में केवल एक ही कर्तव्य का मार्ग बांध रखा है। तुम लोगों के उस पत्थर के बने सरकारी कर्तव्य-पथ पर मेरा स्रोत बार-बार उमड़-घुमड़कर अपनी गति खो देता है।"

"सरकारी कर्तव्य ?"

"हां, तुम लोगों का स्वदेशी कर्तव्य रूपी जगन्नाथ का रथ ! मंत्रदाता ने कहा—सब मिलकर एक मोटे रस्से को लेकर आंख बंद कर खींचते रहो—बस, यही एक काम है। हज़ारों लड़कों ने कमर बांधकर वह रस्सा पकड़ लिया। कितने ही रथ के पहिये के नीचे आ पड़े और कितने ही सदा के लिए पंगु हो गए। ऐसे समय रथ उलटा खींचने का मंत्र पढ़ा जाने लगा। रथ लौटा। जिनके हाड़-पंजर टूट चुके थे उनके हाड़ तो जुड़ने से रहे ; पंगुओं को झटकार-कर रास्ते के किनारे धूल के अंबार में फेंक दिया गया। अपनी शक्ति में विश्वास रखने का तो पहले ही खात्मा कर दिया गया था इसलिए सभी अपने को सरकारी खिलौने के सांचे में ढालने को स्पर्धा के

साथ तैयार हो गए। सरदार के रस्सा खींचते ही सबने एक ही नाच नाचना शुरू कर दिया और विस्मित होकर सोच बैठे कि इसीको कहते हैं शक्ति का नाच। नचाने वाले ने ज्यों ही ज़रा ढील दी कि हज़ार-हज़ार खिलौने व्यर्थ हो गए।"

"अंतू, उनमें से बहुत-से जो पागलपन करके पांव फेंकने लगे, ताल पर न चल सके।"

"शुरू से ही जान लेना उचित था कि मनुष्य बहुत देर तक पुतली का नाच नहीं नाच सकता। मनुष्य के स्वभाव का संस्कार किया जा सकता है किन्तु उसमें समय लगता है। यह समझना भूल है कि स्वभाव को मारकर मनुष्य को कठपुतली बना देने से हमारा काम सरल हो जाता है। मनुष्य को आत्मशक्ति से पूर्ण और अपना एक वैचित्र्य रखनेवाले जीव के रूप में मानना ही सत्य है। मुझे यदि वैसा ही जीव समझकर श्रद्धा करतीं तो इस दल में नहीं खींचती, अपनी छाती से लगातीं।"

"अंतू, तुमने शुरू में ही अपमान करके मुझे भगा क्यों नहीं दिया? मुझे अपराधी क्यों बनाया?"

"यह तो बार-बार तुमसे कहा है। तुम्हारे संग मैं मिल जाना चाहता था; यह अत्यन्त सहज बात थी। दुर्जय था वह लोभ, फिर प्रचलित रास्ते भी बन्द थे। हारकर टेढ़े मार्ग पर चल पड़ा। तुम मुग्ध हुईं। आज तुम्हें बता देता हूं कि इसी रास्ते में मरना होगा। मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम दोनों हाथ फैलाकर मुझे पुकारोगी—बुलाओगी अपने सूने हृदय के पास, दिन पर दिन बीतते जाएंगे, रात पर रात बीतती जाएगी और तुम बुलाती रहोगी।"

"पांव पड़ती हूं, इस तरह न कहो।"

"मैं बेवकूफ की तरह बक रहा हूं, यह सब रोमांटिक-सा सुनाई दे रहा है जैसे आकारहीन पाने को ही पाना कहते हों। मानो तुम्हारा उस दिन का विरह आज के रुद्ध मिलन की एक कौड़ी भी कीमत चुका सकता हो।"

"आज तुम्हारी बातों ने पकड़ लिया है।"

"क्या कहती हो ? आज पकड़ लिया है, सदा से पकड़ रखा है। जब मेरी उम्र थोड़ी थी, अच्छी तरह ज़बान भी न खुली थी तब भी उस मौन अंधकार के भीतर से बातें फूट-फूट उठती थीं, कितनी उपमाएं, कितनी तुलनाएं, कितनी असंलग्न बातें। उम्र होने पर साहित्य के आलोक में प्रवेश किया तो देखा कि इतिहास के रास्ते-रास्ते पर राज्य-साम्राज्य के भग्न स्तूप पड़े हैं; देखा कि वीरों की रण-सज्जा छिन्न-भिन्न पड़ी है; विदीर्ण जयस्तम्भों में से असंख्य पीपल के पेड़ उग आए हैं; अनेक शताब्दियों के अनेक प्रयास धूल के स्तूपों में स्तब्ध पड़े हैं। काल की उस कूड़े-कचरे की राशि पर सबसे ऊंचे एक वाणी का अटल सिंहासन-भर दिखाई पड़ा। उस सिंहासन के चरणों के पास युग-युगान्तर की तरंगें लोटी पड़ती हैं। कितनी ही बार मैंने कल्पना की है कि उस सिंहासन के स्वर्ण-स्तंभों को अलंकृत करने का भार लेकर मैं भी आया हूं। तुम्हारा अन्तू सदा से ही बातों की पकड़ में पड़ा हुआ मनुष्य है। उसे तुम किसी दिन भी पहचान पाओगी, इसकी आशा अब नहीं रह गई। उसे तुमने दल के शतरंज खेल की मुहरों में शामिल कर लिया।"

एला ने कुर्सी से उतरकर अतीन के पांवों पर अपना सिर रख दिया। अतीन ने उसे खींचकर अपने पास बैठा लिया। कहा—"तुम्हारे इस छरहरे शरीर को बातों से ही मैं मन ही मन सजाता रहा हूं; तुम मेरी संचारिणी पल्लविनी लता हो; तुम मेरी 'सुखमिति वा दुःखमिति वा' हो। मेरे चारों ओर जो अदृश्य आवरण है वह वाणी का ही आवरण है; साहित्य की अमरावती से आकर वह भीड़ को संभाल रखता है। इस बात को तुम लोगों के मास्टर साहब जानते हैं कि मैं चिर स्वतन्त्र हूं फिर भी न जाने क्यों मेरा विश्वास करते हैं ?"

"इसीलिए तो विश्वास करते हैं। सबके साथ मिलने के लिए तुम्हें सबके बीच उतरना पड़ता है। स्वयं तुम किसी तरह भी नीचे

नहीं उतर सकते। तुमपर मेरा विश्वास इसीलिए है। कोई स्त्री किसी पुरुष का इतना विश्वास नहीं कर सकती। तुम यदि साधारण पुरुष होते तो मैं एक साधारण स्त्री की तरह तुमसे भय करती किन्तु तुम्हारा संग निर्भय है।"

"उस निर्भय को धिक्कार है। भय करके ही तुम पुरुष को प्राप्त करतीं। देश के लिए दुःस्साहस का दावा करती हो—अपनी जैसी महान के लिए करोगी क्यों न? कापुरुष तो मैं हूं। आज से बहुत पहले ही, जब समय मेरे हाथ में था, असम्मति के निषेध को तोड़कर क्यों मैं तुम्हें छीन नहीं ले गया? भद्रता! प्रेम तो बर्बर होता है। उसकी बर्बरता पत्थर ठेलकर रास्ता कर देने के लिए होती है। वह पागल झरना है, भद्र नगरों का पालतू नल का पानी नहीं।"

एला झट से उठकर बोली—"चलो अंतू, कमरे में चलो।"

अतीन उठकर खड़ा हो गया। बोला—"भय! इतने दिनों बाद शुरू हुआ भय! जीत हुई मेरी। यौवन जब पहली बार आया तब तक स्त्रियों को नहीं पहचानता था। कल्पना में उन्हें अपने से दूर रखकर देखता था। यह साबित करने का समय निकल गया कि तुम जो चाहती हो वही मैं भी चाहता हूं। अन्दर से मैं पुरुष हूं, मैं बर्बर और उद्दाम हूं। समय यदि हाथ से न निकल गया होता तो अभी तुम्हें वज्र बंधनों में बांध लेता, तुम्हारे पंजर की हड्डियां चरचरा उठतीं। तुम्हें सोचने के लिए समय ही न देता, रोने के लिए निश्वास भी तुममें बाकी न रह जाता; निष्ठुर की भांति खींचकर तुम्हें अपने निवास की ओर ले जाता। आज जिस पथ पर आ पड़ा हूं वह छुरे की धार के समान संकीर्ण है, वहां एकसाथ दो जनों के चलने की जगह नहीं है।"

"हे मेरे डाकू! बलात् पकड़ ले जाने की जरूरत नहीं है तुम्हें? लो, यह लो, यह लो।" कहते-कहते वह दोनों हाथ बढ़ाकर अतीन्द्र के पास पहुंच गई और आंखें मूंदकर उसकी छाती के ऊपर गिरकर उसके मुंह की ओर अपना मुंह बढ़ा दिया।

खिड़की में से एला रास्ते की ओर देखकर हठात् बोल उठी—
"सर्वनाश ! उधर देखते हो ?"

"क्या देखने को कहती हो ?"

"उधर, जहां रास्ता मुड़ता है। निश्चय ही वह बटू है—यहीं आ रहा है।"

"आने योग्य जगह को वह पहचानता है।"

"उसको देखते ही मेरा समस्त शरीर संकुचित हो उठता है। उसके स्वभाव में बहुत मांस है, बहुत चर्बी है। जितना ही मैं उसके पास से बचकर चलना चाहती हूं, उसे दूर रखना चाहती हूं, उतना ही वह पास आ जाता है। गन्दा है, गन्दा है वह आदमी।"

"एला, मैं भी उसे सहन नहीं कर पाता।"

"मैं अपने को यह कहकर समझाने और शांत रखने की बड़ी चेष्टा करती हूं कि उसके सम्बन्ध में अन्यायपूर्ण कल्पना कर रही हूं किन्तु किसी तरह शांत नहीं हो पाती। उसकी फटी-फटी-सी दोनों आंखें दूर होते हुए भी अपने लालायित स्पर्श से मानो मेरा अपमान करती हैं।"

"उसकी ओर न देखो, एला ! मन ही मन उसके अस्तित्व की एकदम उपेक्षा नहीं कर सकतीं ?"

"उससे डरती हूं, इसीलिए उसे मन से दूर नहीं कर पाती। उसका एक अन्दरूनी चेहरा मुझे दिखाई पड़ता है—कुत्सित आक्टोपस (अष्टपाद) जंतु की तरह। जान पड़ता है, वह अपने अन्दर के आठों चिपचिपे पांव बाहर निकालकर किसी दिन मुझे असम्मान से जकड़ लेगा—जैसे वह केवल उसीके लिए षड्यंत्र कर रहा है। इसे तुम मेरी अबूझ जनानी आशंका कहकर हंसी में उड़ा दे सकते हो किन्तु इसका भय भूत की भांति मुझपर सवार है। केवल अपने ही लिए नहीं, तुम्हारे लिए मुझे और भी ज़्यादा डर लगता है। मैं जानती हूं कि तुम्हारी ओर उसकी ईर्ष्या सांप के फन की भांति फुफकार रही है।"

"एला, उसके जैसे जन्तुओं में साहस नहीं होता, केवल दुर्गन्ध होती है, इसीलिए कोई उसे मुंह लगाना नहीं चाहता। किन्तु मुझसे वह सर्वान्तःकरण से डरता है ; मैं भयंकर हूं इसलिए नहीं, बल्कि मैं उससे बिलकुल ही एक अलग जाति का हूं, इसलिए।"

"देखो अंतू, जीवन में अनेक प्रकार के दुःख-विपत्ति की संभावना पर मैंने विचार किया है ; उसके लिए मैं तैयार भी हूं परन्तु किसी दुर्योग से किसी दिन भी मैं उसके चंगुल में न पड़ूं, उससे तो मौत ही अच्छी है।" कहकर उसने अंतू का हाथ इस तरह पकड़ लिया मानो उससे उद्धार करने का समय अभी आ पहुंचा हो।

"जानते हो अंतू, हिंस्र जन्तु के हाथ से अपमृत्यु की कल्पना भी कभी-कभी होती है। तब देवता से कहती हूं कि बाघ-भालू खा लें वह भी अच्छा, किन्तु ऐसा कभी न हो कि मगर मुझे कीचड़ में घसीट ले जाए और सड़ाकर खाए।"

"मैं क्या बाघ-भालुओं की कोटि में हूं ?"

"नहीं जी, तुम तो मेरे नरसिंह हो ; तुम्हारे हाथ से तो मरने में ही मेरी मुक्ति है। वह सुनो, पैरों की ध्वनि। ऊपर ही चला आ रहा है।"

अतीन्द्र ने कमरे से बाहर जाकर चिल्लाकर कहा—"बटू, यहां नहीं, चलो नीचे की बैठक में।"

बटू ने कहा—"एला दीदी···"

"एला दीदी अभी कपड़े बदलने गई हैं, चलो नीचे चलें।"

"कपड़े बदलने ? इतनी देर से ? साढ़े आठ···"

"हां, हां, मैंने ही देर करा दी है।"

"सिर्फ एक बात कहनी है। पांच मिनट लगेंगे।"

"वे स्नानागार में गई हैं। कह गई हैं कि इस कमरे में कोई आए, वे यह नहीं चाहतीं।"

"आप ?"

"मुझे छोड़कर।"

बट्टू ओठों में स्पष्ट व्यंग्यपूर्ण हंसी हंसते हुए बोला—"हम लोग तो चिरकाल से हैं, सो रह गए व्याकरण के साधारण नियमों में फंसकर और आपको हुए दो दिन आए, सो आप चढ़ गए आर्ष प्रयोग में। एक्सेप्शन (अपवाद) फिसलन के मार्ग पर ले जाता है, ज्यादा दिनों तक टिकेगा नहीं, यह कहे देता हूं।" इतना कहकर तड़-तड़ करता हुआ नीचे उतर गया।

एक छोटी आरी हाथ में हिलाते हुए अखिल आ पहुंचा। बोला—"यह चिट्ठी है।" अपने अधूरे निर्माण-कार्य के बीच में उठकर वह चला आया था।

"तुम्हारी दीदी की?"

"नहीं, आपकी। आपके हाथों में देने को कहा है।"

"किसने?"

"पहचानता नहीं।" कहकर और चिट्ठी देकर वह चला गया। चिट्ठी के कागज़ का लाल रंग देखते ही अतीन समझ गया कि कोई खतरे की चेतावनी है। उसने गुप्त भाषा में लिखी चिट्ठी पढ़ी—"एला के घर अब न ठहरो, उसे बिना कुछ बताए इसी समय चले आओ।"

कर्म के जिस शासन को उसने स्वीकार कर लिया है उसका अनादर करने को वह आत्मसम्मान के ही विरुद्ध समझता है। चिट्ठी यथारीति चिंदी-चिंदी करके उसने फेंक दी। क्षण-भर वह बंद स्नानागार के बाहर स्तब्ध होकर खड़ा रहा। फिर दूसरे ही क्षण तेज़ी से बाहर निकल गया। रास्ते पर खड़े होकर एक बार दुतल्ले की तरफ देखा—खिड़की खुली हुई है और उससे आरामकुर्सी का कुछ हिस्सा दिखाई पड़ रहा है। उसके साथ लाल-पीली धारियोंवाला तकिये का एक कोना भी दिखाई देता है। अतीन झट चलती ट्राम पर कूदकर सवार हो गया।

तीसरा अध्याय

स्थान-स्थान पर फीके हरे, गहरे हरे, पीलापन लिए हुए हरे और खाकी हरे रंगों के पौधों और झाड़ियों की सघनता है। इधर-उधर कुछ ताल-तलैयां हैं जिनमें पानी के स्थान पर सड़ी पत्तियां और कीच भरी हुई है। उसीके पास से होती एक टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची सड़क चली गई है, जो बैलगाड़ी के पहियों से बुरी तरह टूटी हुई है। कहीं आलू, अरुई इत्यादि के खेत हैं, कहीं नागफनी-सेंहुड इत्यादि लगे हैं। मेंड़ से घिरे धान के खेतों में पानी भरा हुआ है। सड़क गंगा के घाट पर जाकर खतम हो गई है। पुराने ज़माने की छोटी-छोटी ईंटों से निर्मित घाट टूट-फूटकर टेढ़ा पड़ गया है। गंगा उतर गई हैं, इसलिए बीच में कछार-सा हो गया है। घाट से कुछ दूर तट पर जो जंगल है उसमें एक पुराना टूटा-फूटा मकान है जिसके बारे में अफवाह सुनी जाती है कि उसकी अभिशप्त छाया में डेढ़ सौ वर्ष पहले के किसी मातृहत्या का पाप करनेवाले भूत ने आश्रय ले रखा है। बहुत दिनों से किसी सजीव स्वत्वाधिकारी ने उस अशरीरी भूत के विरुद्ध अपना दावा पेश करने की चेष्टा तक नहीं की। यहां का दृश्य यह है—लोगों द्वारा छोड़ा हुआ एक पुराना पूजा का दालान है, उसके सामने काई लगा, टेढ़ा-मेढ़ा बड़ा-सा आंगन है। कुछ दूर पर नदी किनारे जीर्ण-शीर्ण, गिरता हुआ मन्दिर, टूटा हुआ रासमंच, प्राचीन चहारदीवारी का भग्नावशेष तथा कछार के वटवृक्ष के अंधकार में पड़ी हुई टूटी-फूटी नाव दिखाई देती है।

अतीन के इस वर्तमान वासस्थान में दिन के अन्तिम प्रहर में आ पहुंचे कन्हाई गुप्त। उन्होंने छायाछन्न दालान में प्रवेश किया। अतीन चौंक पड़ा, क्योंकि उसके इस निवासस्थान का ज्ञान, उसकी समझ से, कन्हाई को नहीं होना चाहिए था।

"आप यहां !"

कन्हाई ने कहा—"जासूसी करने निकला हूं।"

"इस मज़ाक को ज़रा समझाकर कहिए।"

"यह मज़ाक नहीं है। मैं तो तुम लोगों को रसद पहुंचानेवालों में से एक मामूली आदमी हूं। मेरी चाय की दुकान में शनि का प्रवेश हुआ; बस, मैं निकल पड़ा वहां से। मेरे साथ चली उनकी कुदृष्टि। अन्त में उन्हीं लोगों के जासूसी खाते में नाम लिखवा आया। नीमतला घाट (श्मशान) का रास्ता छोड़ जिनके सामने दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है, उनके लिए यह ग्रांड ट्रंक रोड है, देश की छाती के ऊपर से होकर पूर्व से पश्चिम तक एक-सी फैली हुई है।"

"चाय बनाना छोड़ अब खबरें बना रहे हैं ?"

"बनाने से यह व्यवसाय नहीं चलता। विशुद्ध खबरें ही देनी पड़ती हैं। जो शिकार जाल में पड़ा हुआ है उसकी फांस मैं खींच देता हूं। तुम्हारे हरेन की साढ़े पन्द्रह आना खबरें उनके पास पहुंच चुकी हैं; ज़्यादती की बची-खुची खबर मैंने दे दी है। वह इस समय जलपाईगुड़ी की सरकारी धर्मशाला में होगा।"

"मैं समझता हूं, अब मेरी पारी है।"

"जान तो ऐसा ही पड़ता है। बटू ने मामले को बहुत आगे बढ़ा दिया है। मेरे हिस्से में थोड़ा-सा जो आया है उसके कारण तुम्हें कुछ समय मिल जाएगा। पिछले निवासस्थान से अचानक तुम्हारी डायरी खो गई थी। याद है ?"

"खूब याद है।"

"वह निश्चय ही पुलिस के हाथ पड़ जाती, इसलिए मुझे ही चुरा

लेनी पड़ी।"

"आपको ?"

"हां, जिनका संकल्प अच्छा होता है उनकी सहायता भगवान करते हैं। एक दिन उसमें लिखते समय, मेरी ही चालाकी से तुम पांच मिनट के लिए बाहर चले गए थे। उसी समय मैंने हाथ साफ कर दिया।"

अतीन माथे पर हाथ रखकर बोला—"सब पढ़ लिया आपने ?"

"ज़रूर पढ़ा है। पढ़ते-पढ़ते रात को डेढ़ बज गए। इसके पहले मैं नहीं जानता था कि बंगला भाषा में इतना तेज, इतना रस है। उसमें बहुतेरी गोपनीय बातें हैं किन्तु वे ब्रिटिश साम्राज्य के सम्बन्ध में नहीं हैं।"

"क्या अच्छा काम किया !"

"यह तो नहीं कह सकता कि मैंने कितना अच्छा काम किया है। तुम साहित्यिक हो, डायरी में कहीं भी तुमने छोटी-मोटी या फालतू बातें नहीं लिखीं, किसीका नाम तक नहीं लिखा। केवल भाव की दृष्टि से देखा जाए तो उसमें इतनी घृणा, इतनी 'अश्रद्धा है कि यदि किसी पेंशनभोगी मंत्रिपद प्रार्थी की कलम से निकलती तो राजदरबार में उसे मोक्ष तक प्राप्त हो सकता था। बटू यदि तुम्हारे पीछे न लगता तो भी यह डायरी ही तुम्हारे ग्रहों को शान्त कर देने का काम करती।"

"कहते क्या हैं ! सब पढ़ ली है आपने ?"

"हां, पढ़ा नहीं है तो क्या ? क्या कहूं मैं बेटा, यदि मेरे कोई लड़की होती और ऐसी रचनाएं तुम्हारी कलम से निकलवा सकती तो मैं अपने बाप होने को सार्थक मानता। सच कहता हूं, तुम्हें दल से बांधकर इन्द्रनाथ भाई देश की हानि कर रहे हैं।"

"आपके इस व्यवसाय की बात क्या दल में सब लोग जानते हैं ?"

"कोई नहीं जानता।"

"मास्टर साहब ?"

"बुद्धिमान हैं, अनुमान कर सकते हैं किन्तु मुझसे कुछ पूछा नहीं है; मेरे मुंह से कुछ सुन नहीं पाए हैं।"

"तब केवल मुझसे कही है?"

"यही तो आश्चर्य की बात है। मेरे जैसा सन्देहजीवी मनुष्य यदि किसीका विश्वास न कर सके, तो दम घुटकर वह मर जाएगा। मैं भावुक नहीं हूं, बेवकूफ भी नहीं; इसीसे डायरी नहीं रखता। यदि रखता तो तुम्हारे हाथ देकर मन को हलका कर लेता।"

"मास्टर साहब···"

"मास्टर साहब को खबर दी जा सकती है किन्तु उनके सामने दिल की बात नहीं कही जा सकती। इन्द्रनाथ का प्रधानमंत्री मैं हूं किन्तु इसकी कल्पना भी न करना कि मुझे उनकी सब बातें मालूम हैं। ऐसी बातें भी हैं जिनका अनुमान करने तक का साहस नहीं होता। मेरा विश्वास है कि हम लोगों के दल से जो अपने-आप झड़ने लगते हैं उन्हें इन्द्रनाथ, मेरे ही समान, पुलिस के कूड़ेखाने में फेंक देते हैं। काम बुरा तो है पर निष्पाप है। कहे देता हूं कि कभी न कभी उनकी या मेरी सहायता से ही तुम्हारे हाथों में हथकड़ी पड़ेगी, तब कुछ बुरा न मानना। तुम्हारे इस घर में आने की खबर बटू ने ही पहले पुलिस को दी है। इसीलिए मुझे भी इस दौड़ में शामिल होना पड़ा; मैंने उन्हें तुम्हारी फोटो भी पहुंचाई। अब तुमसे काम की बात कहता हूं। तुम्हें चौबीस घण्टे का समय देता हूं। उसके बाद भी अगर यहां रहोगे तो मैं ही तुम्हें थाने के रास्ते पर पहुंचा दूंगा। यहां से कहां जाना होगा, उसका रास्ता-घाट सब लिख दिया है। इसके अक्षर तुम्हारे परिचित हैं, फिर भी पढ़कर और ज़बानी याद करके इसे फाड़ फेंको। देखो, यह नक्शा है। रास्ते के इस ओर स्कूल वाले मकान के कोने के कमरे में तुम्हारा निवास है। उसके ठीक सामने ही थाना है। वहां एक राइटर कांसटेबल (मुंशी) तुम्हें मिलेगा—नाम है राघव दयाल। वह किसी रिश्ते से मेरा नाती लगता है। तीन पुश्त से वे लोग पच्छिम में ही रहते

आए हैं। वहां तुम्हें बंगला पढ़ाने की मास्टरी मिली है। वहां जाने पर राघव तुम्हारा ट्रंक देखेगा और जेब वगैरा की तलाशी लेगा, संभव है एकाध रौंदा भी जमाए। उसे तुम भगवान की दया समझकर ग्रहण कर लेना। राघव की हिन्दी भाषा में बंगाली मात्र ही उसके साले होते हैं; इस तथ्य को वह सदा ही प्रकट करता रहता है। तुम उसका किसी प्रकार का प्रतिवाद करने की कोशिश न करना और जीते जी फिर इस देश में न आना। बाइसकिल बाहर है। ज्योंही इशारा मिले तुरन्त बैठकर चल देना। अब आओ बेटे, आखिरी बार गले मिल लें।" गले लगकर कन्हाई वहां से चला गया।

अतीन चुपचाप बैठा रहा। अन्दर की ओर नज़र दौड़ाकर देखने लगा। असमय में आ गया उसके जीवन का अंतिम अंक; पर्दा गिरने ही वाला है; दीप बुझने वाला है। मिर्मल प्रभात के प्रकाश में यात्रा आरम्भ हुई थी। आज वहां से वह कितनी दूर आ पड़ा है। रास्ते पर पांव धरते समय जो पाथेय (संबल) हाथ में था वह भी चुक गया है। मंज़िल के आखिरी हिस्से में तो अपने को ठग-ठगकर ही पेट भरा है। एक दिन हठात् रास्ते के मोड़ पर सौंदर्य का अद्‌भुत दान लेकर जो भाग्य-लक्ष्मी उसके सामने आ खड़ी हुई थी वह मानो इस लोक की नहीं थी। यह बात इसके पहले कभी सोच भी न सका था कि वैसा असीम ऐश्वर्य उसके जीवन में प्रत्यक्ष होगा। काव्य और इतिहास में केवल उसका कल्पित रूप देखा था। बार-बार उसके मन में यह बात आई है कि उन दोनों के बीच मानो दांते और बियात्रिचे नया जन्म ले रहे हों। उसी ऐतिहासिक प्रेरणा ने उसके मन के अन्दर बातें की हैं। दांते के समान ही वह विप्लव की भंवर में कूद पड़ा है किन्तु उसका सत्य कहां है, वीर्य कहां है, गौरव कहां है। देखते ही देखते अनिवार्य वेग से वह जिस पंक की ओर खिंचता चला गया है उस मुखौटा लगाए चोरी-डकैती खून-खराबी के अंधेरे में इतिहास का आलोकस्तंभ कभी न खड़ा होगा। आत्मा का सर्वनाश करके अन्त में आज वह देख रहा है कि इसमें कोई

यथार्थ फल नहीं है। सामने निश्चित पराभव है—हार है। हार का भी मूल्य है किन्तु आत्मा के उस पराभव का, आत्मा की उस हार का नहीं जो उसे गुप्त रूप से चलने वाली एक ऐसी घृणाजनक विभीषिका में खींच लाया है जिसका कोई अर्थ नहीं, जिसका कहीं अन्त नहीं।

दिन की ज्योति धीरे-धीरे फीकी पड़ गई। आंगन में झींगुर की पुकार शुरू हो गई; कहीं कोई बैलगाड़ी जा रही है उसका आर्त स्वर सुनाई पड़ने लगा।

एकाएक कमरे में तेज़ी के साथ एला ने प्रवेश किया। उसके अंधवेग में ऐसी अस्तव्यस्तता थी मानो झोंक में आकर आत्महत्या के लिए पानी में कूदने जा रही हो। अतीन के कूदकर खड़ा होते ही वह उसकी छाती पर गिर पड़ी। भर्राए गले से बोली, "अतीन, अतीन, नहीं रह सकी।"

अतीन ने धीरे-धीरे उसे अलग करके सामने खड़ा कर दिया और उसके आंसू से भीगे मुंह की ओर देखने लगा। बोला, "एली, क्या कांड कर डाला तुमने ?"

उसने कहा, "कुछ पता नहीं कि क्या किया।"

"इस ठिकाने का ज्ञान तुम्हें कैसे हुआ ?"

गहरे उलाहने के साथ एला बोली, "तुमने तो अपना ठिकाना मुझे बताया नहीं।"

"जिसने तुम्हें बताया है वह तुम्हारा मित्र नहीं है।"

"इसे भी अच्छी तरह जानती हूं किन्तु तुम्हारी राह का पता न होने से मेरा मन शून्य में घूमा करता था। अन्त में वह मेरे लिए असह्य हो उठा। शत्रु-मित्र का विचार कर सकने योग्य मेरी अवस्था इस समय नहीं है। भला बताओ तो, कब से तुम्हें नहीं देखा !"

"तुम धन्य हो।"

"धन्य तुम हो अंतू। ज्योंही मेरे घर आने का निषेध हुआ, त्यों ही तुमने उसे मान लिया।"

"यह तो मेरी स्वाभाविक स्पर्धा है। प्रचण्ड इच्छा ने अजगर की भांति दिन-रात मुझे खिला-खिलाकर, पीस-पीसकर मारा, तब भी मैं उसे मान न सका। वे सब मुझे 'भावुक' कहते हैं; उन्होंने सोच लिया था कि संकट के समय यह साबित हो जाएगा कि मैं मिट्टी के लोंदे का बना हूं। वे सोच ही नहीं सकते कि भावना ही मेरी अमोघ शक्ति है।"

"मास्टर साहब भी इसे जानते हैं।"

"एली, ब्रिटिश राज्य में इस भुतहे मुहल्ले का जन्म होने के बाद से आज तक किसी भद्र महिला ने इसका दर्शन नहीं किया।"

"उसका कारण यह है कि किसी भद्र महिला के भाग्य में ऐसी ज़रूरत कभी ऐसे दुःसह रूप में प्रकट ही नहीं हुई।"

"किन्तु एली, आज तुमने जो काम किया है वह अवैध है।"

"यह बात मैं जानती हूं। अपनी दुर्बलता को मानूंगी, फिर भी नियम का भंग करूंगी; अपने लिए ही नहीं, तुम्हारे लिए भी। प्रति दिन मेरा मन कहता है कि तुम मुझे बुला रहे हो—पुकार रहे हो। उसका जवाब न दे सकने के कारण मेरे प्राण हांफ-हांफ उठते हैं। बोलो कि मेरे आने से तुम खुश हुए हो?"

"इतना खुश हुआ हूं कि उसे प्रमाणित करने के लिए खतरे में पड़ने को भी तैयार हूं।"

"नहीं, नहीं, तुम खतरा क्यों झेलोगे? जो कुछ होना हो मुझे हो। तो अब मैं जाती हूं अंतू।"

"किसी तरह नहीं। तुम नियम भंग करके चली आई हो, मैं भी नियम भंग करके तुम्हें पकड़े रखूंगा। दोनों मिलकर अपराध को बांट लेंगे। एक दिन तुम्हारे इसी मुख को नूतन आश्चर्य के वसंती रंग में देखा था; वह एक दूसरे ही युग में भटक गया है। आओ, आज इस टूटे-फूटे घर में उसी दिन का आवाहन किया जाए। आओ, और निकट आओ!"

"बैठो, ज़रा घर को एक बार देख-संभाल तो लूं।"

"हाय रे, गंजी चांद पर कंघी फेरने की चेष्टा ?"

एला ने एक बार चारों ओर नज़र फेरकर देखा। फर्श पर कंबल, उसपर चटाई बिछी है। तकिए की जगह किताबों से भरा कैन्वास का एक थैला है। लिखने-पढ़ने के लिए पैकिंग बाक्स रख दिया गया है। कोने में मिट्टी की तश्तरी से ढकी जल की कलसी रखी है। जीर्ण टोकरी में कुछ केले पड़े हैं, उसीमें एनामेल जिसका उड़ गया है, ऐसी एक कटोरी पड़ी है जिससे जरूरत पड़ने पर चाय पीने का काम लिया जाता है। कमरे की दूसरी ओर एक बड़ा लंबा-चौड़ा संदूक है जिसके ऊपर गणेश की मिट्टी की एक मूर्ति है। उससे मालूम होता है कि यहां अतीन का कोई और साथी रहता है। एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक रस्सी बंधी हुई है जिसपर अनेक रंगों के धब्बे लगे हुए मैले गमछे पड़े हैं। घर में सीलन की गन्ध से दम घुटता है।

ठीक ऐसा न सही परन्तु बीच-बीच में इसी प्रकार के और भी दृश्य एला ने देखे हैं। देखकर उसे कोई खास दुःख नहीं हुआ है बल्कि इसके लिए उसने त्यागवीर लड़कों को मन ही मन शाबाशी दी है। एक बार उसने किसी जंगल के किनारे अकुशल हाथों से बने टूटे-फूटे चूल्हे के चारों ओर जले चावलों को पड़े देखा था। तब वह दृश्य उसे राष्ट्र-क्रांति के रोमांस की एक अंगारों से अंकित चित्र के समान लगा था। किन्तु आज का दृश्य देखकर कष्ट से उसका दम घुटने लगा। एला सुख की गोद में पले धनी घर के युवकों की अवज्ञा करने में अभ्यस्त रही है किन्तु आज अतीन को इस गंदे और अभाव-पूरित अकिंचनता के बीच देखकर वह किसी तरह अपने मन को स्थिर न रख सकी।

एला के उद्विग्न मुंह की ओर देखकर अतीन हंस पड़ा। बोला—"मेरा यह ऐश्वर्य स्तंभित होकर देख रही हो। विस्मित इसीलिए हो कि उसका विराट अंश दिखाई नहीं पड़ रहा है। हमें अपना पांव खुला रखना पड़ता है जिससे भागने के समय कोई आदमी

हमें टोक न सके, न कोई चीज़-वस्तु हमें रोक सके। यहां से थोड़ी ही दूर पर जूट मिल के मजूरों की बस्ती है। वे लोग मुझे मास्टर बाबू कहकर पुकारते हैं। चिट्ठी पढ़ा ले जाते हैं, पता-ठिकाना लिखवा ले जाते हैं, समझने आते हैं कि देना-पावना की रसीद ठीक तरह से लिखी गई है या नहीं। उनमें से किसी-किसीको संतान-वात्सल्य का भी शौक है। वे चाहते हैं लड़के को एक दिन मजूर की श्रेणी से हटाकर हुजूर की श्रेणी में रख देना। इस काम में मेरी सहायता मांगते हैं—कोई फल-फलारी दे जाता है, कोई घर की गाय का दूध।"

"अंतू, उस कोने में जो संदूक पड़ा है वह किसका है?"

"बुरी जगह में अकेला रहने के कारण ही उसपर दृष्टि जाती है। अलक्ष्मी के झाड़ू से छिटककर वह रास्ते से यहां आ पहुंचा है—एक मारवाड़ी का है जो तीसरी बार दिवालिया हुआ है। मुझे संदेह होता है कि दिवाला मारना ही उसका प्रधान व्यवसाय है। यह टूटा-फूटा दालान उसके दो भतीजों की ट्रेनिंग अकादमी (प्रशिक्षणशाला) है। दोनों लड़के सवेरे ही सत्तू खाकर यहां आ जाते हैं, बस्ती की औरतों के लिए सस्ते दामों के कपड़े रंगते हैं; बेचकर मूलधन पर सूद देते हैं, और थोड़ा-थोड़ा मूलधन भी चुकाते जाते हैं। ये जो मिट्टी की नांदें देख रही हो इन्हें मैं कोई अपने यज्ञ के काम में नहीं लाता, इनमें रंग घोला जाता है। उस बक्स के भीतर कपड़े तहाकर रख दिए जाते हैं। इसके अलावा उसमें बस्ती की स्त्रियों के शृंगार की और भी नाना प्रकार की चीजें रहती हैं—बिल्लौरी चूड़ी, कंघियां, छोटे आईने, पीतल के बने बाजूबंद इत्यादि। उनकी हिफाज़त का भार मुझपर और प्रेतात्मा पर है। तीन बजे दिन से सौदा बेचने जो निकलते हैं तो फिर लौटकर नहीं आते। कलकत्ते का मारवाड़ी है, न जाने किस चीज़ की दलाली करता है। अंग्रेज़ी जानता हूं, इसलिए मुझे अपना साझीदार बनाना चाहता था किन्तु उस प्राणी पर दया करके मैं तैयार नहीं हुआ।

मेरी आर्थिक अवस्था का पता लगाने की भी कोशिश की, मैंने समझा दिया कि पूर्वजों की जो कुछ सम्पत्ति घर में थी उसका अधिकांश उनके पूर्वजों के पास पहुंच चुका है।"

"यहां तुम्हारी अवधि कितने दिनों की है ?"

"अन्दाज़ से समझता हूं—चौबीस घण्टे की। इस आंगन में रस में सराबोर नाना प्रकार के रंगों की लीला बराबर ज्यों की त्यों चलती रहेगी, किन्तु तुम्हारा अतीन्द्र पीले दूर-दिगंत में विलीन हो जाएगा। मेरी कामना बस यह है कि जिस मारवाड़ी को मेरी छूत लग चुकी है वह हथकड़ी-बेड़ी की महामारी का शिकार न हो। अभी तक मैं नहीं कह सकता कि बिना मूलधन के उसे यहां मेरा सहभागी बनना पड़ेगा या नहीं।"

"तुम्हारा आगे का ठिकाना ?"

"उसे बताने का हुक्म नहीं है।"

"तो क्या मैं कल्पना भी न कर पाऊंगी कि तुम कहां हो ?"

"कल्पना करने में क्या हानि है ? मानसरोवर का तट बड़ी अच्छी जगह है।"

इस बीच थैले के अन्दर से किताबें निकाल-निकालकर एला देखती जा रही थी। कविता की पुस्तकें हैं, ज़्यादातर अंग्रेज़ी की ; दो-एक बंगला की भी हैं।"

अतीन ने कहा—"इतने दिनों से इन्हें ढोता रहा हूं कि कहीं अपनी जाति न भूल जाऊं। इन्हींके वाणीलोक में मेरी आदि-बस्ती थी। पन्ने खोलते ही पेंसिल से चिह्नित उसकी गली-कूचों का पता लग जाएगा। और आज ? यह देखो नज़र जमाकर।"

एला ने हठात् ज़मीन पर लोटते हुए अतीन के पांव पकड़ लिए। बोली—"माफ करो अंतू, मुझे माफ करो।"

"तुम्हें माफ करने की क्या बात है एली ? यदि भगवान हैं, यदि उनकी असीम दया है, तो वे मुझे माफ करें।"

"जब तुम्हें पहचानती न थी तब मैंने इस रास्ते में लाकर तुम्हें

खड़ा कर दिया था।"

अतीन हंसते हुए बोला—"अपने ही पागलपन के जोश में मैं इस कुठौर पर आ पहुंचा हूं, इतनी नामवरी भी न दोगी मुझे? कहे देता हूं कि मुझे नाबालिगों के दर्जे में रखकर अभिभावकगिरी करोगी तो मैं उसे सह न सकूंगा। इससे तो अच्छा है कि मंच से उतर आओ और मेरे मुंह की ओर देखकर कह दो—'आओ मेरे सखा, आधे आंचल पर आकर बैठ जाओ।' "

"शायद ऐसा ही कहती किन्तु आज तुम इस तरह पागल क्यों हो उठे हो?"

"पागल न होऊं? अभी तुमने कहा न कि अपने भुजमृणाल की ताकत से तुमने मुझे इस रास्ते पर निकाल खड़ा किया है?"

"सच्ची बात कहने पर गुस्सा क्यों करते हो?"

"सच्ची बात थी? मैं तो अपने हृदय के वेग से छिटककर इस रास्ते पर आ पड़ा हूं; तुम तो उपलक्ष्य-मात्र हो। दूसरी किसी और तरह की स्त्री का उपलक्ष्य पाता तो इतने दिन 'गोरा-काला-सम्मिलनी क्लब' में ब्रिज खेलता होता, घुड़दौड़ के मैदान में गवर्नर बाक्स को स्वर्गारोहण समझ वहां पहुंचने की साधना करता होता। यदि प्रमाणित हो जाए कि मैं मूढ़ हूं तो मूंछों पर ताव देकर कहूंगा कि यह मूढ़ता मेरी अपनी ही है—जिसे भगवद्दत्त प्रतिभा कहते हैं वही।"

"अंतू, तुम्हारी दोहाई, अब तुम निरर्थक बात न बको। तुम्हारी आजीविका को मैंने ही नष्ट कर दिया है, इस दुःख को मैं कभी भूल न सकूंगी। देख रही हूं कि तुम्हारे जीवन की जड़ ही कट गई है।"

"इतनी देर बाद अब वह नारी प्रकट हुई है जो 'रियल' (यथार्थ) है। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि देशोद्धार के रंगमंच पर तुम रोमांटिक हो। जिस गृहस्थी में कांसे की थाली में दूध-भात या मछली का मुंड परोसा जाता है उसीके बीच में तुम बैठी हो

ताड़ का पंखा हाथ में लिए हुए। पर जहां राजनीतिक डंडे का राज है वहां तुम बिखरे बाल और लाल आंखें किए एक अस्वाभाविक, अशांत अवस्था की झोंक में आती हो, अपनी सहज बुद्धि से नहीं।"

"तुम्हें इतनी बातें करनी आती हैं अंतू ? स्त्रियां भी तुमसे हार मान लेंगी।"

"क्या स्त्रियां भी बात करना जानती हैं ? वे तो सिर्फ बकती हैं। बातों के तूफान से सनातन मूढ़ता की दीवार तोड़ने के लिए किसी दिन मन में आंधी के बादल बन गए थे। अपने शरीर-बल से उसी मूढ़ता पर तुम अपनी जाति का जयस्तंभ चुनने चली हो ?"

"तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मुझे समझा दो कि मेरी गलती के कारण तुमने क्यों गलती की ? क्यों तुमने जीविका छोड़ने का यह दुःख ग्रहण किया ?"

"वह तो मेरी व्यंजना थी—अंग्रेज़ी में जिसे जेस्चर (भंगिमा) कहते हैं। वह तो मेरी अन्तिमकाल की भाषा थी। यदि इस दुःख को न ग्रहण करता तो तुम मुंह मोड़कर चली जातीं, किसी तरह भी न समझ पातीं कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं। उस बात को उड़ा देकर यह न कहो कि वह मेरा देश-प्रेम था।"

"देश क्या इसमें नहीं है अंतू ?"

"देश की साधना और तुम्हारी साधना एक हो जाने के कारण ही इसमें देश दिखाई पड़ता है। किसी जमाने में वीरता के ज़ोर से योग्यता दिखाकर नारी को प्राप्त करना पड़ता था। आज उसी प्रकार प्राण देने का अवसर मिला है मुझे। उस बात को भूलकर मेरे जीविका के अभाव की मामूली-सी बात से तुम्हें व्यथा हो रही है अन्नपूर्णा !"

"हम स्त्रियां सांसारिक हैं। घर-गृहस्थी के अभाव को नहीं सह सकतीं। मेरी एक बात तुम्हें माननी ही होगी। मेरा एक पैत्रिक

मकान है ; मेरे नाम कुछ रुपये भी जमा हैं। तुम्हारी दोहाई है, बार-बार दोहाई देती हूं, मेरी बात रखो, मुझसे रुपये लेने में संकोच न करो। मैं जानती हूं, तुम्हें उसकी बड़ी ज़रूरत है।"

"बड़ी ज़रूरत होने पर मैंट्रिक के लिए नोट लिखने से लेकर कुलीगिरी करने तक का रास्ता खुला हुआ है।"

"मैं मानती हूं अंतू, कि अब तक अपने जमा किए हुए सब रुपये मुझे देश के काम में खर्च कर देने चाहिए थे। किन्तु उपार्जन का अवसर कम मिलने के कारण ही संचय में हम लोगों की अंध आसक्ति होती है। हम भीरु होती हैं।"

"यह तो तुम लोगों की सहज बुद्धि का उपदेश है। उसके सहारे के बिना स्त्रियों की श्री नष्ट हो जाती है।"

"हमारे नीड़ छोटे होते हैं ; वहां छोटी-मोटी चीज़ें हम जमा करती रहती हैं। किन्तु वह सब केवल जीने के लिए ही नहीं करतीं, प्रेम के लिए भी करती हैं। मेरे पास जो कुछ है, सब तुम्हारे ही लिए है, यह बात यदि समझा सको तो जी जाऊंगी।"

"मैं किसी तरह उसे नहीं समझूंगा। आज तक स्त्रियों ने सेवा की है, पुरुषों ने जीविका जुटाई है। उसके विपरीत होने से सिर झुक जाता है। जिस चाह के लिए तुम्हारे सामने बिना किसी संकोच के हाथ फैला सकता हूं, उसे दूर फेंककर तुमने प्रण का बांध बांधा है। उस दिन नारायणी स्कूल का खाता लेकर तुम हिसाब मिला रही थीं। मैं तुम्हारे पास बैठ गया—जैसे तूफान की चोट खाकर चील ज़मीन पर आ पड़ती है। चोट खाया हुआ मन लेकर आया था। कर्तव्य की बेकार की छाप जिन वस्तुओं पर लगी होती है, उनमें स्त्रियों की निष्ठा उसी प्रकार होती है जैसे पंडों के पांवों पर गिरने की अटल भक्ति यात्रियों में होती है। उससे उन्हें छुड़ा लेना असंभव है। मेरी मुंह उठाकर तुमने देखा तक नहीं। बैठा-बैठा एकटक देखता रहा ; इच्छा हुई कि तुम्हारी उन सुकुमार उंगलियों के पोरों से मेरे देह-मन में स्पर्श-सुधा टपक पड़े। किन्तु तुम्हें जरा भी दर्द न लगा।

कृपण ! तुम इतना भी न दे सकीं। मैंने अपने मन में कहा—शायद मुझे अभी और गहरी कीमत चुकानी पड़ेगी। किसी दिन जब फटे सिर और कटी देह से धरती पर लोटूंगा तब उस टूटे घायल प्राण को तुम अपनी गोद में उठाओगी।"

एला की आंखें छलछला उठीं। उसने कहा—"आः, तुमसे पार नहीं पा सकती अंतू! इतना भी तुम बिना दिए न ले सके? छीन क्यों न लिया मेरा खाता? तुम समझ नहीं पाते कि तुम्हारा ही संकोच मुझे संकुचित कर देता है। अंतू, तुम्हारा स्वभाव, एक बात में, स्त्रियों से मिलता है। तुम इच्छा तो प्रबल करते हो किन्तु तुम्हारी रुचि उद्दाम भाव से उसके लिए दावा करने से तुम्हें रोकती है।"

"यह धारणा मुझमें पुश्त दर पुश्त चली आई है; बचपन से ही मेरे खून-मांस में मिल गई है। सदा से यही कल्पना करता आया हूं कि स्त्रियों के शरीर और मन में एक पवित्रता की मर्यादा है। उनके शरीर के सम्मान की सशंक चित्त से रक्षा करने का अभ्यास हमारे पूर्वजों को रहा है। मेरे कुंठित मन को ज़रा-सा भी आश्रय देने के लिए यदि कभी तुम्हारा मन द्रवित हो तो मेरी ओर से भीख मांगे जाने की अपेक्षा न करना। उस तरह मांगना मैंने सीखा ही नहीं। भूख चाहे जितने ज़ोर की लगी हो पर उसके कारण मैं पेटू नहीं हो सकता। मेरी प्रकृति में वह बात है ही नहीं। मैं अपनी कामना की कुलीनता को नष्ट नहीं कर सकता।"

एला अतीन के पास आकर सटकर बैठ गई, और उसका सिर अपनी छाती के पास खींच लेकर उसपर अपना सिर झुकाकर रख लिया। बीच-बीच में धीरे-धीरे उसके बालों में उंगलियां फेरने लगी। कुछ देर बाद अतीन ने सिर उठाया और एला का हाथ अपने हाथ में दबा लिया। फिर बोला—"जिस दिन मोकामा में जहाज़ पर चढ़ा था उस दिन पितामही भाग्यदेवी ने अपने अदृश्य हाथ से मेरे कान मल दिए थे। तब उसका अर्थ मैं समझ नहीं सका था। तबसे ही मेरा मन स्मृति के आकाश में केवल आकाश-कुसुम चुनता

रहा है। उस दिन की बात तुम्हारे लिए पुरानी हो गई है क्या ?"

"ज़रा भी नहीं।"

"तो सुनो। मेरा बिहारी नौकर भारी असबाब नीचे के डेक से गाड़ी तक ले गया था। मेरे पास था केवल एक छोटा चमड़े का बैग, जिसके लिए मैं इधर-उधर कुली को देख रहा था। बड़े ही भलेमानस की तरह सहसा तुमने पास आकर कहा—'कुली चाहते हैं ? क्या ज़रूरत है ! मैं लिए चलती हूं।' 'हां, हां, क्या करती हैं, यह क्या करती हैं' कहता रहा पर तुमने उसे उठा ही लिया। मेरी कठिनाई देखकर तुमने पुनः निवेदन किया—'संकोच हो रहा हो तो एक काम कीजिए, यह मेरा बक्स है, इसे उठा लें, इससे एक-दूसरे का ऋण पूरा हो जाएगा।' उठाना पड़ा। अपने बैग से सात गुना भारी बक्स। हत्था पकड़कर कभी दाहिने हाथ में कभी बायें हाथ में बदल-बदलकर गिरते-पड़ते किसी तरह रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे के डब्बे में ला पटका। उस समय सिल्क का कुर्ता धूप के कारण पसीने से तर हो गया, सांस तेज़ हो गई। पर तुम्हारे मुख पर था निस्तब्ध अट्टहास्य। संभव है, करुणा कहीं आड़ में छिपी रही हो और उसे प्रकट करना तुमने ठीक न समझा हो। उस दिन मुझे आदमी बनाने की बड़ी ज़िम्मेदारी तुम्हारे ही हाथ में थी।"

"छिः छिः, मत कहो, मत कहो, उसे याद करके भी शर्म आती है। तब कैसी थी मैं, कैसी बेवकूफ, कैसी अद्भुत ! तब तुम अपनी हंसी दबा रखते थे, इसीलिए मेरी हिम्मत इतनी बढ़ गई थी। तुम सहते कैसे थे ? क्या स्त्रियों को बुद्धि की कोई ज़रूरत ही नहीं ?"

"हो या न हो, उससे कुछ आता-जाता नहीं। उस दिन जिस परिवेश में तुम मेरे पास दिखाई पड़ी थीं वह तो कोई 'हायर मैथेमेटिक्स' (उच्च गणित) नहीं था, 'लाजिक' (तर्कशास्त्र) नहीं था। वह तो वही था जिसे मोह कहते हैं, शंकराचार्य जैसे महावीर तक जिसे मुद्‌गर की चोट करके ज़रा भी पिचका न सके। तब शाम हो चली

थी ; आकाश में क्षणजीवी मेघ दीख रहे थे। गंगा का जल लालिमा लिए तरंगित हो रहा था। उस दिन की वह छरहरी शीघ्रगामी देह उस रंगीन आलोक की भूमिका में सदा के लिए मेरे मन पर खिच गई। उसके बाद क्या हुआ ? कानों से तुम्हारी पुकार सुनी। किन्तु कहां आ पड़ा हूं ? तुमसे कितनी दूर ! तुम्हें भी उसका सब हाल कहां मालूम है ?"

"मुझे जानने क्यों नहीं देते अंतू ?"

"मनाही माननी होगी। केवल इतना ही क्यों ? क्या होगा सब कुछ कहकर—प्रकाश कम होता जा रहा है, आओ और नज़दीक आओ। मेरी दोनों आंखें तुम्हारे पास तृप्ति के दरबार में आई हैं। केवल तुम्हारे पास ही मेरी तृप्ति है। उसका आयतन—उसका घेरा बहुत ही छोटा है—सोने के पानी में रंगे हुए फ्रेम के समान। उसी-में तस्वीर को मढ़वा क्यों न लूं ? ये जो तुम्हारे दो-चार अशिष्ट बाल बिखरकर आंखों के ऊपर आ पड़े हैं और जिन्हें तुम अपने द्रुत हाथों से बार-बार हटा देती हो ; काले पाढ़ की टसर की साड़ी, कंधे पर ब्रोच (कांटा) नहीं, आंचल से सिर के बाल पिन किए हुए, आंखों में थकान-भरे क्लेश की छाया, होंठों पर विनय का आभास, चारों ओर से अन्तिम अस्पष्टता में डूबता हुआ दिन का प्रकाश—यह जो उस दिन देखा वही आश्चर्यजनक सत्य है। इसका अर्थ क्या है, किसीको समझाकर कह नहीं सकता—किसी एक अद्वि-तीय कवि के हाथ का स्पर्श न होने के कारण ही इसके अव्यक्त माधुर्य में इतना गंभीर विषाद भरा हुआ है। इस छोटी अत्यन्त सुन्दर परिपूर्णता को एक बड़ी नामवाली, बड़ी छायावाली विकृति चारों ओर से भृकुटी ताने घेरे हुए है।"

"तुम क्या कह रहे हो अंतू ?"

"बहुतेरी झूठी बातें। याद है, तुमने कुली-बस्ती में मुझे घर लेने को कहा था। तुम्हारे मन में मेरे वंशगत अभिमान को नष्ट करने का भाव था। तुम्हारे उस महान उद्देश्य में मुझे स्वाद आने

लगा। 'डेमोक्रैटिक पिकनिक' (जनसत्तात्मक सैर-सपाटा) शुरू हुआ। गाड़ीवानों के मुहल्ले में रहने लगा। उनसे भाईचारे का नाता स्थापित कर उनकी पशुशाला के साथ-साथ चल पड़ा। किन्तु उनको भी समझना बाकी न रहा और मुझे भी समझते देर न लगी कि सम्पर्क के ये छापे भट्टी की आंच न सह पाएंगे। निस्सन्देह, ऐसे भी महान लोग हैं जिनका सुर सब बाजों में बजता है, यहां तक कि रूई धुनने की धुनकी में भी। किन्तु जब हम उनकी नकल करने की चेष्टा करते हैं तो सुर नहीं मिलता। तुमने अपने मुहल्ले के उस ईसा के शिष्य (ईसाई) को नहीं देखा जो 'ब्रदर' (बंधु) कहकर, जो मिलता है उसीको छाती से लगा लेता है। यह उसके अनुष्ठान का एक अंग है। यह तो ईसा का उपहास करने के समान है।"

"तुम्हें क्या हो गया है अंतू ? तुम किसी क्षोभ के कारण ये सब बातें कह रहे हो। तुम क्या यह कहना चाहते हो कि अरुचि को दूर कर देने पर भी कर्तव्य को कर्तव्य नहीं माना जा सकता ?"

"रुचि की बात नहीं है एली, यह स्वभाव की बात है। अत्यन्त अरुचि होने पर भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वीर का कर्तव्य करने के लिए ही कहा था, कुरुक्षेत्र में खेती करने के उद्देश्य से 'एग्रिकल्चरल इकोनामिक्स' (कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्र) पर बहस करने के लिए नहीं कहा था।"

"तुम होते तो श्रीकृष्ण तुमसे क्या कहते अंतू ?"

"बहुत दिन पहले ही उन्होंने चुपके से मेरे कानों में कह रखा है। उनकी कान में कही हुई उस बात को मुंह खोलकर कहने का भार था मेरे ऊपर। इस कृत्रिमता की, बनावट की सृष्टि केवल इस कारण हुई है कि गुरुजी ने कान पकड़कर बिना सोचे-समझे सबका एक ही कर्तव्य बता दिया है। तुम्हारे मुंह पर ही कहता हूं कि उनके जिस मोहल्ले में बड़े घमण्ड के साथ नम्रता दिखाने जाती हो वहां तुम्हारे लिए भी जगह नहीं है। देवी ! तुम सब बस देवी हो। स्त्रियों की अन्य पोशाकों की भांति नकली देवी की यह बनावटी पोशाक

ी दर्जी रूपी पुरुष की दूकान की बनी हुई है।"

"देखो अंतू, आज भी मैं यह समझ नहीं पाती हूं कि जो रास्ता तुम्हारा नहीं है उस पथ से तुम क्यों बलपूर्वक लौट नहीं आते ?"

"बताऊं ? इस रास्ते में प्रवेश करने के पहले मैं बहुत-सी बातें जानता नहीं था, बहुत-सी बातें ऐसी थीं जिनके बारे में सोच भी नहीं सकता था। एक-एक कर मैंने सब लड़कों को अपने निकट पाया। जो उम्र में मुझसे बड़े थे उनकी पदधूलि मैंने माथे से लगाई। उन्होंने आंखों के आगे न जाने क्या-क्या देखा है, न जाने क्या-क्या सहा है ; उनका कितना अपमान हुआ है, वह सब दुस्सह बातें कभी प्रकाश में न आएंगी। उन्हींकी असह्य व्यथा ने मुझे पागल बना दिया था। बार-बार मैंने मन में प्रतिज्ञा की कि भय से हार नहीं मानूंगा, पीड़न से हार नहीं मानूंगा, पत्थर की दीवार पर सिर पटक-पटककर मर जाऊंगा तब भी तालियां बजाकर उस हृदयहीन दीवार की उपेक्षा ही करता रहूंगा।"

"उसके बाद क्या तुम्हारा मत बदल गया ?"

"मेरी बात सुनो। जो शक्तिमान के विरुद्ध लड़ाई करता है, वह निरुपाय होकर भी उस शक्तिमान की बराबरी में खड़ा होता है। इससे ही उसके सम्मान की रक्षा होती है। मैंने उसी सम्मानपूर्ण अधिकार की कल्पना की थी। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे आंखों के सामने स्पष्ट होता गया कि असाधारण उच्च मानसवाले लड़के धीरे-धीरे अपनी मानवता खोते जा रहे हैं। इससे बड़ा नुकसान और कोई नहीं हो सकता। अच्छी तरह जानता था कि वे मेरी बात हंसी में उड़ा देंगे, व्यंग्य-विद्रूप करेंगे तब भी मैंने उनसे कहा—'अन्याय में अन्यायकारी के समान हो जाना भी उससे हार जाना है। पराजय के पहले, मरने के पहले हमें साबित कर जाना होगा कि हम मनुष्यता के धर्म में उनकी अपेक्षा बड़े हैं ; न होते तो इतने बड़े बलवान के साथ हार का यह खेल ही कैसे खेलते ? मूर्खतापूर्ण आत्महत्या के लिए ?' ऐसी बात नहीं है कि उन लोगों में से किसीने

मेरी बात समझी न हो। पर उनकी संख्या कितनी है?"

"तब भी तुमने उनको छोड़ क्यों नहीं दिया?"

"कैसे छोड़ सकता था? तब तक सभी चारों ओर से दण्ड के निष्ठुर जाल में फंस चुके थे। खुद उनका इतिहास देख गया। उनकी मर्मान्तिक वेदना को समझ सका इसलिए चाहे उनपर क्रोध करूं या घृणा करूं परन्तु उन विपत्ति में फंसे हुए लोगों को छोड़ना मेरे लिए संभव न हुआ। किन्तु इस जानकारी से एक बात अच्छी तरह समझ में आ गई कि शारीरिक बल में हम जिनके बिलकुल ही बराबर नहीं हैं उनके साथ देह के बूते पर कुश्ती लड़ने की चेष्टा करने से आन्तरिक दुर्गति और भी शोचनीय हो उठती है। रोग सभी प्रकार के शरीरों के लिए दुःख का ही कारण होते हैं किन्तु दुर्बल-क्षीण शरीर के लिए तो वे मारक हो उठते हैं। मनुष्यत्व का अपमान करके कुछ दिन तक अपनी जयडंका बजाते हुए चलने में भी वे ही लोग सफल होते हैं जिनमें अपना बाहुबल होता है; हम उस तरह नहीं चल सकते। ऐसा करने पर हम आगे-पीछे कलंक से काले होकर पराभव की अंतिम सीमा में बदनामी के अंधकार के बीच विलीन हो जाएंगे।"

"कुछ समय से इस भयंकर ट्रेजेडी (दुःखान्त घटना) का चेहरा मेरे सामने भी स्पष्ट होता जा रहा है अंतू! गौरव की पुकार सुनकर आई थी किन्तु अब तो दिन-दिन लज्जा में गड़ती जा रही हूं। मुझे बताओ, इस समय हम क्या कर सकती हैं।"

"सब मनुष्यों के सामने ही धर्म-क्षेत्र में धर्मयुद्ध उपस्थित है और वहां है 'मृतोवापितेन लोकत्रयं जितम्' (मर गया तो भी उसने तीनों लोक जीत लिए) किन्तु हमारे जैसे कुछ थोड़े लोगों के लिए इस यात्रा में उस क्षेत्र में जाने का रास्ता बंद है। यहां का कर्मफल यहीं पूरी तरह चुका जाना होगा।"

"सब समझ रही हूं, तब भी अंतू, कुछ दिनों से तुम देश के काम के बारे में ऐसे धिक्कार के साथ बातें करते हो कि मुझे चोट लगती है।"

"उसका कारण क्या है, यह बात इस समय न कहें तो भी काम चल जाएगा। उसका समय बीत चुका है।"

"तब भी कह दो।"

"मैं तुम्हारे निकट आज स्वीकार करूंगा कि तुम लोग जिसे देश-भक्त कहती हो, मैं वह देश-भक्त नहीं हूं। देश-भक्ति से भी बड़ी जो चीज़ है उसे जो लोग सर्वोच्च नहीं मानते उनके लिए यह देश-भक्ति मगर की पीठ पर चढ़कर पार जाने की नाव के समान है। मिथ्याचरण, नीचता, पारस्परिक अविश्वास, अधिकार पाने के लिए षड्यंत्र, जासूसी मनोवृत्ति—ये सब बातें एक दिन उन्हें कीचड़ के गड्ढे में घसीट ले जाएंगी। इसे मैं स्पष्ट देख रहा हूं। इस गर्त के भीतर की भद्दी दुनिया में दिन-रात झूठ की जो विषैली हवा चल रही है, उसमें रहते हुए अपने स्वभाव से उस पौरुष की रक्षा नहीं कर सकता जिससे पृथ्वी पर कोई बड़ा काम किया जा सकता है।"

"अच्छा अंतू, तुम जिसे आत्महत्या कहते हो, वह क्या केवल हमारे ही देश में है?"

"ऐसा तो मैं नहीं कहता। पृथ्वी-भर के राष्ट्रवादी आजकल पाशव गर्जन के साथ इस भयंकर झूठी बात की घोषणा करने में लगे हैं कि देश की आत्मा को मारकर भी देश के प्राण बचाए जा सकते हैं। इसका प्रतिवाद करने की इच्छा मेरी छाती में असह्य आवेग के साथ घुमड़-घुमड़ उठती है। इस बात को मैं शायद सच्ची भाषा में कह सकता था, और वह सुरंग के भीतर छिपकर, चोरी करके, देशोद्धार करने की चेष्टा की अपेक्षा सदा के लिए बहुत बड़ी बात होती। किन्तु इस जन्म में तो कहने का समय ही नहीं मिला। इसीलिए मेरी वेदना आज इतनी निष्ठुर हो उठी है।"

एला ने गहरी सांस फेंककर कहा—"लौट आओ अंतू।"

"अब लौटने का रास्ता नहीं रह गया है।"

"है क्यों नहीं?"

"यदि कुठौर में आ पड़ा हूं तो वहां की जिम्मेदारी भी तो अंत

तक निभानी होगी।"

एला अतीन के कण्ठ से लिपटकर बोली—"लौट आओ अंतू। इतने वर्षों से जिस विश्वास के बीच मैं रह रही थी उसकी दीवार तुमने तोड़ दी है। आज मैं जल में बहती हुई फूटी नाव को पकड़े हुए हूं। मुझे भी बचाकर, उससे उद्धार करके, ले चलो। इस तरह चुपचाप न बैठ रहो, बोलो अंतू, एक बार बोलो। अभी तुम हुक्म दो, मैं अपना प्रण तोड़ दूंगी। मैंने भूल की है। मुझे माफ करो।"

"उपाय नहीं है।"

"क्यों उपाय नहीं है। ज़रूर है।"

"तीर लक्ष्य से चूक सकता है किन्तु तूणीर में वापस नहीं लौट सकता।"

"मैं स्वयंवरा हूं, मुझसे ब्याह करो अंतू। अब मैं और समय नष्ट न कर सकूंगी—गंधर्व विवाह से हो या जैसे भी हो, मुझे सहधर्मिणी बनाकर अपने रास्ते पर ले चलो।"

"विपत्ति का मार्ग होता तो तुम्हें साथ ले चलता। किन्तु जहां धर्म नष्ट हुआ है वहां तुम्हें सहधर्मिणी न बना सकूंगा। जाने दो, जाने दो इन सब बातों को। इस जीवन की नौका डूब जाने के बाद, अब भी, कुछ सत्य बच गया है। उसीकी बात सुनूं तुम्हारे मुंह से।"

"क्या कहूं ?"

"कहो कि तुम मुझे प्यार करती हो।"

"हां, करती हूं।"

"कहो, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं' यह बात तुम्हें तब भी याद रहेगी जब मैं यहां न रहूंगा।"

एला निरुत्तर हो चुपचाप बैठी रही। उसकी दोनों आंखों से आंसू गिरने लगे। बहुत देर बाद उसने भर्राए हुए गले से कहा—"फिर कहती हूं अंतू, कुछ तो लो मेरे हाथ से—लो यह मेरे गले का हार।"

इतना कहकर उसने हार अतीन के पांव पर रख दिया।

"किसी तरह नहीं।"

"क्यों इतने रूठते हो ?"

"हां, रूठता हूं। ऐसे भी दिन थे कि तब देतीं तो मैं इसे अपने गले में पहन लेता—किन्तु आज जेब में डालने के लिए दे रही हो; अन्वाभाव के गड्ढे में उसे डाल रही हो ! तुमसे मैं भीख न लूंगा।"

एला अतीन के पैरों पर लोटती हुई बोली—"ले चलो, मुझे अपनी संगिनी बनाकर।"

"लोभ न दिखाओ एला। बहुत बार कह चुका हूं कि मेरा रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है।"

"तब वह रास्ता तुम्हारे लिए भी नहीं है। लौट आओ, लौट आओ।"

"रास्ता मेरा नहीं है, मैं ही रास्ते का हूं। गले की फांसी को कोई गले का गहना नहीं कहता।"

"अंतू, अच्छी तरह समझ लो कि तुम्हारे चले जाने पर मैं एक मुहूर्त भी न जिऊंगी। तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। इस बात पर अगर आज तुम सन्देह करते हो तो भी मैं एकान्त चित्त से आशा करती हूं कि मेरी मृत्यु के उपरांत उस सन्देह के पूर्णतः निर्मूल हो जाने का कोई न कोई कारण भी तुम्हें अवश्य मिलेगा।"

हठात् अतीन उछलकर खड़ा हो गया। दूर से तीर के समान तीखा सीटी का शब्द सुनाई पड़ा। चौंककर बोला —"चल दिया।"

एला उससे लिपट गई। बोली—"ज़रा देर और ठहरो।"

"नहीं।"

"कहां जा रहे हो ?"

"कुछ नहीं जानता।"

एला ने अतीन के पांव पकड़कर कहा—"मैं तुम्हारी दासी हूं, तुम्हारे चरणों की दासी हूं, मुझे छोड़कर मत जाओ, मुझे छोड़कर मत जाओ।"

क्षण-भर ठिठककर अतीन खड़ा रहा। इसी समय दूसरी बार

सीटी की आवाज़ आई। अतीन गरजकर बोला—"छोड़ दो।" और अपने को छुड़ाकर वहां से चला गया।

इस समय संध्या का अंधेरा घना हो चला है। एला धरती पर औंधे मुंह पड़ी है। उसका हृदय अन्दर से सूख गया है; अब उसकी आंखों में आंसू नहीं हैं। इसी समय गंभीर कंठ से आवाज़ सुनाई पड़ी—"एला!"

वह चौंककर बैठ गई। देखा, बिजली का टार्च लिए हुए इन्द्रनाथ खड़े हैं। तुरन्त उठ खड़ी होकर बोली—"लौटा लाइए अंतू को।"

"उस बात को जाने दो। यहां क्यों आई?"

"विपत्ति है, यही जानकर आई हूं।"

तीव्र भर्त्सना के स्वर में इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम्हारी विपत्ति की बात कौन सोच रहा है? यहां की खबर तुम्हें दी किसने?"

"बटू ने।"

"तब भी तुमने उसका मतलब नहीं समझा?"

"समझने की अक्ल मुझमें नहीं थी। प्राण हांफ उठे थे।"

"तुम्हें मार सकता तो अभी मार देता। जाओ, घर लौट जाओ। बाहर टैक्सी है।"

चौथा अध्याय

"फिर आ गया अखिल ! बोर्डिंग से भाग आया ! तुझसे किसी तरह पार पाना कठिन है। बार-बार कह दिया कि खबरदार, इस मकान में न आया कर। किसी दिन मरेगा।"

अखिल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और कंठस्वर को कुछ धीमा करके कहा—"एक कोई दाढ़ीवाला पीछे से दीवार लांघकर बगीचे में घुसा है। इसीलिए मैंने तुम्हारे इस कमरे को भीतर से बन्द कर दिया है—सुनो, पांव की आहट।" अखिल अपनी छुरी का सबसे मोटा फल खोलकर खड़ा हो गया।

एला बोली—"वीर पुरुष ! तुम्हें छुरी खोलनी न होगी। ला, दे मुझे।" और उसने छुरी उसके हाथ से छीन ली।

सीढ़ी पर से आवाज़ आई—"कोई डर की बात नहीं, मैं हूं अंतू।"

क्षण-भर में एला का मुंह पीला पड़ गया। बोली—"दरवाज़ा खोल दे।"

दरवाज़ा खोलकर अखिल ने पूछा—"वह दाढ़ीवाला कहां है ?"

"दाढ़ी निश्चित रूप से बगीचे में मिल जाएगी, बाकी का आदमी तो यहीं उपस्थित है। जाओ, दाढ़ी खोज लाओ।"

अखिल चला गया।

एला पत्थर की मूर्ति की तरह क्षण-भर स्थिर दृष्टि से देखती

खड़ी रही। फिर बोली—"अंतू, तुम्हारी यह कैसी सूरत है।"

अतीन ने कहा—"अच्छी नहीं है।"

"तब क्या सचमुच···"

"सचमुच क्या है ?"

"तुम्हें सर्वनाशी रोग ने पकड़ लिया है ?"

"नाना डाक्टरों के नाना मत हैं, उनपर विश्वास किए बिना भी काम चल सकता है।"

"निश्चय ही तुमने कुछ खाया नहीं है।"

"वह बात रहने दो। समय नष्ट न करो।"

"क्यों आए अंतू, क्यों आए ? ये तो तुम्हें पकड़ने की घात लगाए बैठे हैं।"

"उन्हें निराश नहीं करना चाहता।"

अतीन का हाथ दबाते हुए एला ने कहा—"तुम क्यों आए इस निश्चित विपत्ति के बीच ? अब उपाय क्या है ?"

"क्यों आया, इस बात को जाने के पहले कहकर चला जाऊंगा। इस बीच जितने क्षणों तक हो सके, उस बात को भुलाए रखना चाहता हूं। नीचे के दरवाज़े सब बन्द किए आता हूं।"

थोड़ी देर बाद फिर ऊपर आकर अतीन ने कहा—"चलो छत पर। नीचे की मंज़िल की रोशनी के बल्ब इत्यादि सब निकाल लाया हूं। डरो मत।"

दोनों छत पर चले गए। छत पर जाकर उसका दरवाज़ा भी बन्द कर दिया। बन्द दरवाज़े की टेक लगाकर बैठ गया अतीन ; एला उसके सामने बैठ गई।

"एला, मन को सहज करो। जैसे कुछ हुआ ही न हो, समझ लो कि हम लोग लंका काण्ड आरम्भ होने के पहले सुन्दरकाण्ड में हैं। तुम्हारे हाथ बर्फ की तरह ठण्डे क्यों हैं ? कांप रहे हैं ! लाओ, गरम कर दूं।"

एला के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर कुर्ते के नीचे उसने अपनी

छाती पर दबा लिए। उस समय दूर पर किसी ब्याहवाले घर में शहनाई बज रही थी।

"डर लगता है एली ?"

"किस बात का डर ?"

"सब कुछ का। एक-एक मुहूर्त का।"

"डर तुम्हारे लिए ही होता है अंतू, और किसी बात के लिए नहीं।"

अतीन ने कहा—"एली, मन में यह बात लाने की चेष्टा करो कि हम पचास या सौ वर्ष आगे की ऐसी ही एक निस्तब्ध रात में हैं। वर्तमान की चहारदीवारी अत्यन्त संकीर्ण है ; उसमें भय-चिंता-दुःख-कष्ट सभी कुछ बहुत बढ़-चढ़कर अनुभव होता है। वर्तमान वह नीच पदार्थ है जिसमें 'छोटे मुंह बड़ी बात' है। वह मुखौटा लगाकर हमें डराता है—जैसे हम लोग मुहूर्त की गोद में नाचते हुए बच्चे हों। मृत्यु उस मुखौटे को छीनकर फेंक देती है। मृत्यु अत्युक्ति नहीं करती। जिसे बहुत ज़्यादा प्यार किया था उसपर इसी वर्तमान की धोखेधड़ी से भरी कलम ने कीमत की जगह मोटी रकम लिख दी थी और जिसे बिलकुल खो दिया उसके शरीर पर दो दिन टिकने वाली स्याही में लिखकर लेबिल चिपका दिया था—असीम दुःख। मिथ्या बात है यह ! जीवन ही जालिया है ; वह अनन्तकाल के हस्ताक्षर को जाल करके चलाना चाहता है। मौत आकर उसपर हंसती है और वंचना के, जाल-फरेब के इन कागजों को लुप्त कर देती है। वह हंसी, निष्ठुर हंसी नहीं, व्यंग-विद्रूप की हंसी नहीं ; मोह-रात्रि के अवसान में शिव की हंसी की तरह वह शान्त, सुन्दर हंसी है। एली, रात को अकेले बैठकर कभी मृत्यु की स्निग्ध गंभीर मुक्ति का अनुभव तुमने किया है—मुक्ति जिसमें चिरकाल की क्षमा होती है ?"

"तुम्हारी तरह महान स्वरूप में देखने की शक्ति मुझमें नहीं है अंतू, फिर भी तुम लोगों की बात याद करके मन जब उद्वेग से

अभिभूत हो जाता है तब मन में इस बात का बहुत निश्चित रूप में अनुभव करने की चेष्टा करती हूं कि मरना आसान है।"

"भीरु, मृत्यु को भागने का पथ क्यों समझ रही हो? मृत्यु सबसे अधिक निश्चित है—वह जीवन की समस्त गति-स्रोतों के लिए चरम समुद्र है; उसमें सब सत्य-मिथ्या, भले-बुरे का अन्तिम समन्वय हुआ है। आज की इस रात में हम दोनों उस विराट की फैली हुई भुजाओं की पकड़ में हैं। तुम्हें याद है इब्सन की वे चार पंक्तियां?—

"अॅपवड्र्स
टुवड्र्स द पीक्स,
टुवड्र्स द स्टार्स,
टुवड्र्स द वास्ट साइलेंस।"[१]

एला अतीन का हाथ अपनी गोद में लिए स्तब्ध होकर बैठी रही। सहसा अतीन हंस पड़ा। फिर बोला—"असीम में पीछे की ओर मौत का काला पर्दा स्थिर टंगा हुआ है; उसीपर जीवन का कौतुक नाट्य नाचता हुआ अन्तिम अंक की ओर चला जा रहा है। उसीकी एक छवि आज देख लो आंखें खोलकर। आज से तीन साल पहले इसी छत पर तुमने मेरे जन्मदिन का उत्सव मनाया था। याद है?"

"अच्छी तरह याद है।"

"तुम्हारे भक्त लड़कों के दल में से सभी आए थे। भोज के आयोजन में कोई धूमधाम नहीं थी। भुना हुआ चिउड़ा था, साथ में थी उबाली हरी मटर। ऊपर से नमक-मिर्च डाल दी गई थी; अंडे से बने बड़े भी थे। याद है, सबने खाया था छीना-झपटी करके?

---

१. "ऊर्ध्व दिशि में
उच्च शिखरों की तरफ
नक्षत्रों की ओर,
विराट मौन की दिशा में।"

सहसा मोतीलाल ने हाथ-पांव फटकारकर शुरू कर दिया था—'आज नवयुग में अतीन बाबू का जन्मदिवस है।' मैंने झट उठकर उसका मुंह बन्द कर दिया। कहा—'अगर लेक्चर शुरू किया तो तुम्हारे पुराने जन्म का दिन अभी खत्म कर दूंगा।' बटू ने कहा—'छिः! छिः! अतीन बाबू, भाषण की यह भ्रूणहत्या?' नवयुग, नव-जन्म, मृत्यु-तोरण इत्यादि उनके बंधे-बंधाए शब्द सुनकर मुझे शर्म आती है। उन लोगों ने मेरे मन पर अपने दल का रंग चढ़ाने की चेष्टा प्राणपण से की है—किन्तु किसी तरह उनका वह रंग चढ़ न सका।"

"अंतू, मैं अबोध हूं; मैंने ही सोचा था कि वर्दी पहनाकर तुम्हें अपने दल के प्यादों में मिला लूंगी।"

"इसीलिए तो मुझे दिखा-दिखाकर तुम उनके साथ दीदीपना निभाया करती थीं। सोचती रही होगी कि मेरे संशोधन-सुधार के लिए कुछ ईर्ष्या की भी आवश्यकता है। स्नेह-यत्न, कुशल-संभाषण, विशेष मंत्रणा, अनावश्यक उद्वेग आदि को तुमने मनिहारी की रंगीन सामग्री की तरह उनके सामने सजा रखा था। आज भी तुम्हारा वह करुण प्रश्न कानों में गूंज रहा है—'नंदकुमार, तुम्हारी आंखें और मुंह लाल क्यों दिखाई दे रहे हैं?' बेचारा भलामानुस था, सत्य के लिए सिरदर्द को अस्वीकार करने के पूर्व ही माथे पर भीगे कपड़े की पट्टी आ गई। मैं मुग्ध होने पर भी समझ जाता था कि यह अत्यन्त असामयिक दीदीपन तुम्हारे अति पवित्र भारतवर्ष का विशेष फरमाइशी पदार्थ है। वह पूर्णतः आदर्श स्वदेशी बहि-नापा है।"

"आः, चुप रहो, चुप रहो अंतू।"

"उस समय तुम्हारे अन्दर अनेक निरर्थक वस्तुओं की अधिकता थी; बहुत-सा हास्यकर ढोंग था। यह बात तुम्हें माननी ही पड़ेगी।"

"मानती हूं, मानती हूं, सौ बार मानती हूं। तुम्हींने उन

सबको खत्म कर दिया है। तो फिर आज क्यों इस प्रकार निष्ठुर होकर बातें कर रहे हो ?"

"किस मनस्ताप से कह रहा हूं, सुनोगी। जीविका से भ्रष्ट करने के अपराध का अनुभव कर तुम उस दिन मुझसे माफी मांग रही थीं। यथार्थ जीवन के पथ से भ्रष्ट हुआ, और उस सर्वनाश के बदले में जो दावा कर सकता था, वह भी न हो सका। मैंने अपने स्वभाव को तोड़ डाला किन्तु कुसंस्कार की अंधी तुम अपने उस प्रण को भी न तोड़ सकीं जिसमें कोई सत्य नहीं था। तब वह माफी मांगना फालतू ही था। मैं जानता हूं कि तुम क्या सोच रही हो—यही कि कैसे इतना संभव हुआ ?"

"हां अंतू, मेरा आश्चर्य किसी तरह दूर नहीं होता—मैं नहीं जानती कि मुझमें ऐसी क्या शक्ति थी ?"

"तुम कैसे जानोगी ? तुम लोगों की शक्ति तुम्हारी अपनी शक्ति नहीं है; वह महामाया की शक्ति है। कैसा आश्चर्यजनक सुर है तुम्हारे कण्ठ में; वह मेरे मन के अनन्त गगन में ध्वनि की नीहारिका की सृष्टि करता है। और तुम्हारे ये हाथ, ये उंगलियां सत्य-असत्य सबको पारस-पत्थर की भांति छूकर कृतार्थ कर सकती हैं। नहीं जानता कि किस मोह के वेग से धिक्कार देते-देते स्खलित जीवन के अपमान को अपना लिया। इतिहास में ऐसी विपत्ति की बातें पढ़ी हैं किन्तु मेरे जैसे अपनी बुद्धि पर अभिमान करने वाले के साथ भी ऐसी घटना हो सकती है, इसकी तो मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था। अब जाल तोड़ देने का समय आ गया है, इसीलिए आज तुम्हें सत्य बातें ही सुनाऊंगा, फिर चाहे वे कितनी ही कठोर हों।"

"कहो, कहो, जो कहना हो कहो। मुझपर दया न करो। मैं निर्मम हूं, मैं निर्जीव हूं, मैं मूढ़ हूं—तुम्हें पहचानने की शक्ति मुझमें कभी नहीं थी। जो अतुलनीय था वही हाथ पसारे मेरे पास आया था पर मैं अयोग्य थी, मूल्य न चुका सकी। बड़े भाग्य से

आया वह धन सदा के लिए चला गया। इससे भी बड़ा कोई दण्ड हो तो मुझे दण्ड दो।"

"रहने दो, रहने दो दण्ड की यह बात। मैं क्षमा ही करूंगा—मृत्यु जो क्षमा करती है वही असीम क्षमा। इसीलिए तो आज आया हूं।"

"इसीलिए ?"

"हां, केवल इसीलिए।"

"तुम भले ही क्षमा न करते परन्तु क्यों आए तुम इस तरह आग में कूदने के लिए। जानती हूं, जानती हूं, जीने की इच्छा नहीं है तुम्हें। यदि यही बात है तो बचे-खुचे दिन मुझे दो, दो अपनी सेवा करने का अन्तिम अधिकार। तुम्हारे पांव पड़ती हूं।"

"क्या करूंगा सेवा लेकर। जीवन के फूटे घड़े में सुधा उंडेलोगी? तुम नहीं जानतीं कि मुझमें कैसा असह्य क्षोभ है। जिस आदमी ने अपना सत्य खो दिया हो उसे शुश्रूषा देकर क्या कर सकती हो ?"

"सत्य नहीं खोया है अंतू। सत्य तुम्हारे हृदय में अक्षुण्ण बना हुआ है।"

"नहीं, नहीं, खो चुका हूं, खो चुका हूं।"

"न कहो, ऐसी बात न कहो।"

"मैं क्या हूं, यदि इसे जान पातीं तो तुम सिर से पैर तक सिहर उठतीं।"

"अंतू, तुम अपनी कल्पना से आत्मनिन्दा को बढ़ा रहे हो। निष्काम भाव से जो कुछ किया है, उसका कलंक कदापि तुम्हारे स्वभाव पर नहीं लग सकता।"

"मैंने अपने स्वभाव की ही हत्या कर डाली है जो सब हत्याओं से बड़ा पाप है। किसी भी अहित को जड़ से मार नहीं सका, जड़ के साथ मारा है केवल अपने को। उसी पाप के कारण, तुम्हें अपने हाथ में पाकर भी तुम्हारे साथ अपने को मिला नहीं सकता। पाणि-ग्रहण ! इन्हीं हाथों से ! किन्तु ये सब बातें मैं क्यों कह रहा हूं ?

ये सारे काले दाग यमकन्या के काले जल में धुल जाएंगे, इसीलिए उसीके किनारे पर आकर बैठा हूं। जितनी भी हल्की बातें हैं, सब आज हंसते-हंसते कह देनी चाहिए। उस जन्मदिन के इतिहास को पहले समाप्त कर लूं। क्या कहती हो एली ?"

"अंतू, ध्यान नहीं दे पाती हूं।"

"हम दोनों के जीवन में ध्यान देने योग्य जो कुछ है वह केवल इन थोड़े-से बच रहे हलके दिनों में ही है। भूलने योग्य भारी-भारी दिन तो बहुत-से हैं।"

"अच्छा, कहो अंतू।"

" जन्मदिन का खाना-पीना हो गया। सहसा नीरद को शौक हुआ 'पलाशी का युद्ध' नामक बंगला काव्य सुनाने का। उठकर खड़ा हो, हाथ फैला फैलाकर गिरीश घोष[1] की भंगी में कहने लगा—

" कहां जा रही, इधर ज़रा देखो हे सहस्र किरण !

एक बार लौटकर देखो तो हे दिनमणि !

" नीरद आदमी भला है, बड़ा ही सीधा-सादा किन्तु उसकी स्मरणशक्ति बड़ी निठुर है। सभा भंग कर देने के लिए जब मेरा मन व्यथित हो उठा था तब उसने भवेश से गाने के लिए कहा। भवेश ने कहा कि हारमोनियम नहीं है इसलिए वह गा न सकेगा। तुम्हारे घर वह पाप (हारमोनियम) था नहीं। मुसीबत दूर हुई। आशा-भरे मन से सोच रहा था कि अब अन्त है, पर इसी समय सतू ने खामखा तर्क छेड़ दिया—आदमी जन्मदिन में पैदा होता है या जन्मतिथि में ? रुकने को कितना कहा पर वह रुका नहीं। बहस में देशात्मबोध की गन्ध आने लगी; गले की आवाज़ तेज होने लगी—बंधु-विच्छेद होने-होने को हुआ। तुमपर बड़ा क्रोध हुआ। मेरा जन्मदिन तो एक बहाना था, बड़ा लक्ष्य तो था सहकर्मी बन्धुओं को एकत्र करना ! "

---

१. बंगभाषा के प्रसिद्ध नाटककार।

"कौन-सा लक्ष्य था और कौन-सा बहाना था, बाहर से तुम इसका विचार न करो अंतू। दण्ड के योग्य मैं अवश्य हूं किन्तु अन्यायपूर्ण दण्ड मत दो। तुम्हें याद नहीं है कि उसी जन्मदिन में ही तो अतीन्द्र बाबू ने अंतू नाम पाया था? यह कोई छोटी बात नहीं है। अपने अंतू नाम का इतिहास तो बताओ, सुनूं।"

"तो सुनो सखी! तब मेरी उम्र चार-पांच साल की होगी। ऊंचाई में छोटा था, मुंह से बोलना न जानता था। सुना है कि आंखों की चितवन बेवकूफों जैसी थी। ताऊजी पछांह से आए थे। उन्होंने पहली ही बार मुझे देखा। गोद में बैठा लिया। बोले—इस बालखिल्य का नाम अतीन्द्र किसने रखा है? यह तो अतिशयोक्ति अलंकार हुआ—इसका नाम रखो अनतीन्द्र। वही अनति शब्द स्नेह के कण्ठ में बन गया—अंतू। तुम्हारे पास भी एक दिन 'अति' 'अनति' हो गया। अपना मान मैंने अपनी इच्छा से खो दिया है।"

एकाएक अतीन चौंककर रुक गया। फिर बोला—"पैरों का शब्द सुनाई देता है।"

एला ने कहा—"अखिल!"

आवाज़ आई—"दीदी रानी!"

छत पर आने का दरवाज़ा खोलकर एला ने पूछा—"क्या है?"

अखिल ने कहा—"खाने को।"

घर में खाना पकाने की कोई व्यवस्था नहीं है। थोड़ी ही दूर पर जो देशी रेस्टरां है उसीसे खाना आता है।

एला ने कहा—"अंतू, चलो खाने।"

"खाने की बात न करो। न खाने पर मरने में आदमी को बहुत दिन लगते हैं। नहीं तो भारतवर्ष अब तक न टिकता। भाई अखिल, अब मन में क्रोध न रखना। मेरे हिस्से का तुम्हीं खालो। उसके बाद 'पलायनेन समाचरेत्'—भागना, जहां तक हो सके भाग जाना।"

अखिल चला गया।

दोनों फिर छत की फर्श पर बैठ गए। अतीन ने फिर शुरू किया—"उस दिन का वह जन्मदिन चलने लगा तेजी के साथ। कोई उठने का नाम ही नहीं लेता था। मैं बार-बार घड़ी देखता था, पर रात के वे अन्धे (रतौंधी के मारे) मेरा इशारा क्यों समझने लगे? तब अन्त में तुमसे कहा—'जल्दी-जल्दी तुम्हें सो जाना चाहिए क्योंकि अभी उसी दिन तो इन्फ्लुएंजा से उठी हो।'

"सवाल हुआ—'कितने बजे हैं?'

"उत्तर—'साढ़े दस।'

"सभा भंग होने के कुछ लक्षण दिखाई पड़े। बटू ने कहा—'आप तो बैठे ही हैं अतीन बाबू? चलिए, एकसाथ ही चला जाए।'

"'कहां?'

"'वहीं मेहतरों की बस्ती में। एकाएक पहुंचकर उनका मद्य-पान बन्द करना होगा।'

"मेरा तो सर्वांग जल उठा। बोला—'मद्य तो बंद कर दोगे किन्तु उसके बदले में दोगे क्या?' इस बात को लेकर इतना उत्तेजित होने की कोई आवश्यकता न थी। फल यह हुआ कि जो चले जा रहे थे वे भी रुक गए। शुरू हुआ—'क्या आप यह कहना चाहते हैं...'

"मैं तीव्र स्वर में बोल उठा—'मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता।'

"इतना झुंझला उठना भी उचित न था। तब मैंने तुम्हारी ओर कनखियों से देखते हुए, भारी गले से कहा—'तब आज चला' किन्तु दुतल्ले पर तुम्हारे कमरे के सामने पहुंचते ही पांव रुक गए। कैसी तरकीब निकाली! सीनेवाली जेब को देखकर बोला—'फाउंटेन-पेन शायद छूट गया है।'

"बटू ने कहा—'मैं खोजकर लिए आता हूं।' इतना कहकर वह छत की ओर चला गया। मैं भी पीछे-पीछे दौड़ा। कुछ देर तक

खोजने का बहाना करके बट्टू मुस्कराते हुए बोला—'ज़रा देखिए तो कहीं जेब में ही न हो।' मैं तो जानता ही था कि फाउंटेनपेन की खोज के लिए भौगोलिक अनुसंधान करने की आवश्यकता अपने ही घर पर है। तब विवश होकर कहना ही पड़ा—'मुझे एला दीदी के साथ कुछ खास बात करनी है।'

"बट्टू ने कहा—'अच्छी बात है। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।'

"मैंने कहा—'प्रतीक्षा करने की ज़रूरत नहीं। तुम जाओ।'

"बट्टू ने तीव्र हास्य के साथ कहा—'अतीन बाबू, गुस्सा क्यों होते हैं, मैं चल दिया।' "

फिर पांवों की आहट सुनकर अतीन चौंक उठा। अखिल छत पर आया। बोला—"किसी आदमी ने यह पुर्ज़ा दिया है अतीन बाबू के लिए। उसे रास्ते पर खड़ा कर आया हूं।"

एला की छाती धक्-से हो उठी। बोली—"कौन आया ?"

अतीन ने कहा—"बाबू को कमरे में ले आओ।"

अखिल ने ज़ोर से कहा—"नहीं, न आने दूंगा।"

अतीन ने कहा—"भय की कोई बात नहीं है। तुम उन्हें पहचानते हो। बहुत बार देखा है।"

"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

"खूब अच्छी तरह पहचानते हो। मैं कहता हूं—भय की कोई बात नहीं है। मैं तो हूं ही।"

एला ने कहा—"अखिल, तू जा, व्यर्थ भय न कर।"

अखिल चला गया।

एला ने पूछा—"बट्टू आया है क्या ?"

"नहीं, बट्टू नहीं है।"

"तब बताओ न, कौन है ? मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"उस बात को जाने दो, जो कह रहा था, उसे कहने दो।"

"अंतू, किसी तरह मैं ध्यान नहीं दे पाती हूं।"

"एला, मुझे पूरी कर लेने दो अपनी कहानी। अब उसमें ज़्यादा देर नहीं है। तब तुम चली आईं छत पर। रजनीगंधा की मृदु गंध की लहर आई। अकेले में मुझे देने के लिए तुमने फूलों का वह गुच्छा छिपा रखा था। हम दोनों के सम्बन्ध की दुनिया में हृदय का खेल इन्हीं लजीले फूलों के गुप्त अभिनंदन के साथ शुरू हुआ। उसके बाद धीरे-धीरे अतीन्द्रनाथ की विद्या-बुद्धि और गंभीरता आत्म-विस्मृति के अतल स्पर्श में विलीन हो गई। उसी दिन पहले-पहल तुमने मेरे गले में हाथ डालकर कहा था—'यह लो जन्मदिन का उपहार।' वही प्रथम चुम्बन मुझे मिला था। आज मैं अन्तिम चुम्बन का दावा करने आया हूं।"

अखिल ने आकर कहा—"बाबू ने तो दरवाज़े पर धक्का मारना शुरू कर दिया है। जान पड़ता है, दरवाज़ा तोड़ डालेगा। कहता है, ज़रूरी बात करनी है।"

"भय नहीं है अखिल, दरवाज़ा तोड़ने के पहले ही उसे ठंडा कर दूंगा। बाबू को यहीं अनाथ छोड़कर तुम तुरन्त कहीं और भाग जाओ। एला दीदी की देख-रेख करने को मैं यहां हूं ही।"

एला ने अखिल को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर उसका माथा चूमकर कहा—"मेरा सोना, मेरा धन, मेरा भैया, तू चला जा। तेरे लिए ये कुछ नोट मैंने अपने आंचल में बांध रखे हैं—यह एला दीदी का आशीर्वाद है। तू मेरे पांव छूकर कह कि अभी चला जाएगा, ज़रा भी देर न करेगा।"

अतीन ने कहा—"अखिल, मेरी एक सलाह तुझे माननी ही पड़ेगी। यदि तुमसे कभी कोई पूछ-ताछ करे तो तुम ठीक ही बात बताओगे। कहना, रात में ग्यारह बजे मैंने ही तुम्हें ज़बर्दस्ती घर से बाहर निकाल दिया है। चलो, अपनी बात मैं सच्ची कर आऊं।"

एला ने एक बार और अखिल को अपने पास खींचकर कहा—"मेरे लिए चिन्ता न करना भैया। तुम्हारे अंतू दादा तो हैं ही, कोई डर की बात नहीं है।"

अखिल को पकड़कर अतीन जब बाहर ले जाने लगा तब एला ने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी अंतू।"

आदेश के स्वर में अतीन ने कहा—"नहीं, किसी तरह नहीं।"

छत की छोटी मुंडेरी पर एला छाती दबाए खड़ी रही। रुलाई आ-आकर गले में उमड़ने लगी। समझ गई कि आज रात अखिल उसके पास से सदा के लिए चला गया।

अतीन लौट आया। एला ने पूछा—"क्या हुआ अंतू ?"

अतीन ने कहा—"अखिल चला गया। भीतर से दरवाज़ा बंद कर दिया है।"

"और वह आदमी ?"

"उसे भी छोड़ दिया। वह बैठा-बैठा सोच रहा था कि काम की उपेक्षा करके मैं केवल गप्प झाड़ता रहूंगा। जैसे कोई नया आख्य उपन्यास (अरेबियन नाइट्स, अलिफलैला) शुरू हुआ हो। और है भी आख्य उपन्यास ही, सबका सब उपन्यास ही तो है, बिलकुल ही आश्चर्य-भरा वृत्तान्त है ! डर रही हो एला ! तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?"

"तुमसे डर, कह क्या रहे हो ?"

"मैं क्या नहीं कर सकता ? पतन की अन्तिम सीमा पर पहुंच चुका हूं। उस दिन हमारा दल एक अनाथ विधवा का सर्वस्व लूट लाया। मन्मथ था गांव के सम्पर्क से बुढ़िया का जाना-सुना आदमी-खबर देकर और रास्ता दिखाकर वही दल को ले गया था। छद्म-वेश में भी विधवा ने उसे पहचान लिया और बोल उठी—'मन्नू बेटा ! तू भी ऐसा काम कर सकता है !' उसके बाद बुढ़िया को ही खत्म कर दिया। जिसे हम देश का प्रयोजन कहते हैं उसी आत्म-धर्मनाशक प्रयोजन के लिए इन्हीं हाथों से वे रुपये यथास्थान पहुंचे हैं। मेरा उपवास भंग किया गया है उन्हीं रुपयों से। इतने दिनों बाद चोरी के कलंक से असली अपराधी बना हूं। चोरी का माल छुआ है ; उसका भोग किया है। चोर अतीन्द्र का नाम बटू ने प्रकाशित

कर दिया है। कहीं पीछे सबूत की कमी से दण्ड न हो या कम दण्ड मिले, इसलिए उसने पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट की मार्फत कमिश्नर से यह हुक्म मंगाने की सलाह कर रखी है कि मुकद्दमा अंग्रेज मैजिस्ट्रेट की इजलास में न दायर होकर बंगाली जयंत हाजरा के इजलास में पेश हो। यह निश्चित रूप से जानता हूं कि कल पकड़ा जाऊंगा। इस बीच मुझसे भय करो। मैं अपनी मरी हुई आत्मा के काले भूत से खुद डरता हूं। आज तुम्हारे घर में और कोई नहीं है।"

"क्यों, तुम तो हो ?"

"मेरे हाथ से तुम्हें बचाएगा कौन ?"

"न बचाएगा तो क्या ?"

"तुम्हारी ही अपनी मंडली में एक दिन जो एला दीदी के देश-भाई थे, हर साल भैया दूज को जिनके माथे पर तुमने तिलक लगाया था उन्हींमें आज बातचीत चल रही है कि तुम्हारा जीवित रहना अब ठीक न होगा।"

"उनकी अपेक्षा अधिक अपराध मैंने क्या किया है ?"

"तुम उनकी बहुतेरी बातें जानती हो ; बहुतों के नाम-धाम जानती हो। पीड़ा दिए जाने पर तुम बता दोगी सब।"

"कभी नहीं।"

"कैसे कहूं कि जो आदमी आज आया था वह यही हुक्म लेकर नहीं आया ? हुक्म में कितना बल है, यह तो तुम जानती ही हो।"

एला चौंक उठी ; बोली—"तुम सच कह रहे हो अंतू ? यह सत्य है ?"

"मुझे एक खबर मिली है।"

"क्या खबर ?"

"आज भोर होने के पहले रात में ही पुलिस तुम्हें गिरफ्तार करने आएगी।"

"यह तो मैं निश्चित रूप से जानती थी कि एक न एक दिन पुलिस मुझे पकड़ने आएगी।"

"कैसे जान गई ?"

"कल बटू की चिट्ठी आई थी, उसने खबर दी थी कि पुलिस मुझे पकड़ने आएगी। लिखा था—कि वह अब भी मुझे बचा सकता है।"

"किस तरह ?"

"लिखा था कि यदि मैं उससे ब्याह कर लूं तो वह मेरी जमानत देकर मेरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेगा।"

अतीन के मुंह पर अंधेरा छा गया। उसने पूछा—"तुमने क्या जवाब दिया ?"

एला ने कहा—"मैंने उसी चिट्ठी पर सिर्फ इतना लिख दिया—'पिशाच।' और कुछ नहीं।"

"मुझे खबर मिली है कि वह बटू ही कल पुलिस को साथ लेकर आएगा। तुम्हारी स्वीकृति मिलते ही वह बाघ से बचाकर तुम्हें मगर के गड्ढे में आश्रय देने के परोपकार में लग जायगा। उसका हृदय कोमल है।"

एला ने अतीन के पांव से लिपटकर कहा—"मार डालो मुझे अंतू, अपने हाथ से मार डालो। इससे बढ़कर सौभाग्य मेरा और कुछ नहीं हो सकता।" वह उठ खड़ी हुई और बार-बार अतीन का चुम्बन लेती हुई बोली—"मारो, इसी समय मारो।" उसने कुरता छाती पर से फाड़कर फेंक दिया।

अतीन पत्थर की मूर्ति के समान कठोर होकर खड़ा रहा।

एला ने कहा—"ज़रा भी सोच-विचार न करो अंतू। मैं तो तुम्हारी हूं, पूरी तरह तुम्हारी हूं—मरने पर भी तुम्हारी ही रहूंगी। लो मुझे, ग्रहण करो। गंदे हाथ न लगने देना मेरी देह पर; मेरी यह देह तुम्हारी ही है।"

अतीन ने कठोर स्वर में कहा—"जाओ, अभी सो जाओ। हुक्म देता हूं, सोने जाओ।"

अतीन को छाती से चिपटाकर एला कहने लगी—"अंतू, मेरे

अंतू, मेरे राजा, मेरे देवता ; तुम्हें मैं कितना प्यार करती हूं, आज तक पूरी तरह प्रकट न कर सकी। उसी प्यार की दोहाई है, मार, मार दो मुझे।"

अतीन एला का हाथ ज़बर्दस्ती पकड़कर उसे सोने के कमरे में खींच ले गया। बोला—"सोओ, अभी सोओ। सो जाओ।"

"नींद नहीं आएगी।"

"नींद की दवा है मेरे हाथ में।"

"कोई ज़रूरत नहीं है अंतू। मेरी चेतना का अन्तिम क्षण तक तुम्हीं ग्रहण करो। क्लोरोफार्म लाए हो ? उसे फेंक दो। मैं डरपोक नहीं हूं। ऐसा करो कि जागती हुई तुम्हारी गोद में मर सकूं। अन्तिम चुम्बन आज अनन्त हुआ अंतू ! अंतू !"

दूर से आती सीटी का शब्द सुनाई पड़ा।

त्याग

त्याग

एक कहानी

फागुन की रात है। आम के बौर की सुगंध से लदी हवा चल रही है। तालाब के किनारे जो पुराना लीची का पेड़ है उसपर से घने पत्तों से छनकर रात-भर जागनेवाले पपीहे का तान मुखर्जियों के घर के निद्राहीन शयनकक्ष में आ रही है। हेमंत कभी अपनी स्त्री की वेणी के बाल खोलकर उन्हें अपनी उंगलियों में लपेट लेता है, कभी उसके कड़े और चूड़ियों की रगड़ से निकलनेवाली मधुर ध्वनि सुनता है, कभी जूड़े की माला उतार उसके मुंह पर रख देता है। संध्या के समय निस्तब्ध खड़े फूल के पौधों को हवा जैसे हिला जाती है, हेमंत के मन की भी वही हालत है।

किन्तु कुसुम चांदनी में डूबे असीम शून्य की ओर टकटकी लगाए चुपचाप बैठी है। पति की चंचलता उससे टकराकर पीछे लौट आती है। अन्त में हेमंत ने बड़ी अधीरता से कुसुम के हाथों को झकझोरते हुए कहा—"कहां हो तुम कुसुम ! इतनी दूर पहुंच गई हो कि दूरबीन से देखने पर भी एक बिंदु-सी दिखाई पड़ती हो। मेरे पास आओ, देखो, आज रात कितनी सुहानी है।"

कुसुम ने आकाश की ओर से अपनी दृष्टि हटा ली और हेमंत की ओर देखते हुए कहा—"मैं ऐसा मंत्र जानती हूं कि यह चांदनी रात, यह वसंती वायु मिथ्या होकर इसी समय नष्ट हो सकती है।"

हेमंत बोला—"यदि जानती भी हो तो उस मंत्र को इस समय पढ़ने की आवश्यकता नहीं, हां, यदि ऐसा मंत्र तुम्हें मालूम हो जिससे सप्ताह में तीन-चार रविवार हो सकें या रात देर तक ठहर सके तो उसे सुनने को राज़ी हूं।" इतना कहकर उसने कुसुम को अपने पास खींचना चाहा किन्तु कुसुम उस आलिंगन की पकड़ में न आकर बोली—"जो बात मैं तुमसे मरते समय कहना चाहती थी, उसे आज ही कह देने को जी कर रहा है। सुनकर मुझे कड़ी से कड़ी जो सज़ा दोगे, उसे मैं खुशी-खुशी सह लूंगी।"

सज़ा के बारे में एक पुराना संस्कृत श्लोक सुनाकर हेमंत मज़ाक में कुछ कहने जा रहा था कि सुना क्रोध में भरे किसी आदमी के चप्पलों की आवाज़ नज़दीक आती जा रही है। यह हेमंत के पिता हरिहर मुखर्जी के पांवों की पहचानी हुई ध्वनि थी। हेमंत घबरा गया।

हरिहर बाबू दरवाज़े के पास आकर गरजते हुए बोले—"हेमंत, बहू को अभी घर से निकाल दो।"

हेमंत ने स्त्री की ओर देखा किन्तु उसमें आश्चर्य का कोई चिह्न न दिखाई पड़ा। वह दोनों हाथों से अपना मुंह छिपाकर अपनी शक्ति और इच्छा से चेष्टा कर रही थी कि दुनिया से लुप्त हो जाए। दक्षिण पवन के साथ पपीहे की ध्वनि पूर्ववत् घर में आ रही थी किन्तु सुनाई किसीको न दे रही थी। दुनिया कितनी सुन्दर है किन्तु हमारे लिए वह कितनी व्यथापूर्ण हो उठती है।

२

हेमंत ने बाहर से लौटकर स्त्री से पूछा—"क्या यह सच है?"

स्त्री ने कहा—"हां।"

"इतने दिनों से मुझे बताया क्यों नहीं?"

"बहुत कहने की चेष्टा की है किन्तु मुझसे कही नहीं गई। मैं

बड़ी पापिन हूं।"

"तो आज सब स्पष्ट कह डालो।"

कुसुम ने गम्भीरता और दृढ़ता के साथ सारी कहानी सुना दी, मानो धीर गति से आग के बीच चलती हुई निकल गई हो। कोई इसे समझ नहीं पाया कि वह अन्दर कहां कितनी जल गई है।

सब बातें सुनने के बाद हेमंत उठकर चला गया।

कुसुम ने समझा कि स्वामी सदा के लिए उसके जीवन से दूर चले गए हैं, अब वह कभी उन्हें पा न सकेगी। उसे इसपर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसका मन सूखकर ऐसा निर्जीव हो गया कि यह घटना भी एक सामान्य घटना-सी उसे लगी। यह संसार और उसमें मिलने-वाला प्रेम उसे आदि से अंत तक मिथ्या मालूम पड़ने लगा। हेमंत के अतीत प्रेम की बातें याद करके वह फीकी निरानन्द हंसी हंस पड़ी और वह हंसी एक पैनी निष्ठुर छुरी की धार की तरह उसके मन को एक ओर से दूसरी ओर तक काटती चली गई। वह सोचने लगी कि यह वही प्रेम तो है जिसे वह इतना महत्त्व देती थी, जिसमें पति का इतना लाड़, इतनी घनिष्ठता प्राप्त हुई थी, जिसमें क्षण-भर का विरह भी मर्मान्तक लगता था और क्षण-भर का मिलन जिसमें हृदय को आनन्द से पागल कर देता था। क्या उसकी नींव इतनी-सी ही थी! समाज के एक ही हलके धक्के में वह बालू की भीत की तरह ढह गया। अभी कुछ ही देर पहले हेमंत उसके कानों के पास मुंह लाकर कह रहा था—'कैसी सुहावनी रात है!' वह रात तो अब भी ज्यों की त्यों है, अब भी पपीहा वैसे ही बोल रहा है, वही दक्षिण पवन पलंग की मसहरी को अस्थिर कर रहा है, वही चांदनी सुख से थकी सुंदरी की तरह खिड़की से आकर पलंग के पास बिखर गई है। क्या यह सब मिथ्या है? क्या यह सब झूठ है, क्या यह सब माया है? और प्रेम—वह तो इससे भी ज्यादा मिथ्या है, उससे भी बढ़कर मिथ्याचारी है।

३

दूसरे दिन सवेरे ही रात-भर नींद न आने से परेशान, हेमंत पागल की भांति प्यारीशंकर घोषाल के घर पहुंच गया।

प्यारीशंकर ने पूछा—"कहो हेम, क्या खबर है?"

हेमंत तो आग की तेज लपटों में जल रहा था। कांपता हुआ बोला—"तुमने हमारी जाति नष्ट कर दी है, हमारा सर्वनाश किया है, तुम्हें इसका दण्ड भोगना पड़ेगा।" कहते-कहते उसका गला भर गया।

प्यारीशंकर ने हंसकर कहा—"और तुम लोगों ने तो हमारी जाति बचाई है। हमारे समाज की रक्षा की है, पीठ थपथपाकर सुख की मीठी नींद सुलाया है न? मुझपर तो तुम लोगों की बड़ी कृपा रही है, बड़ा प्रेम रहा है! क्यों?"

हेमंत के मन में आया कि तुरन्त प्यारीशंकर को जलाकर भस्म कर दे किन्तु वह अपनी आग से आप ही जलने लगा। उधर प्यारीशंकर ज्यों के त्यों और जहां के तहां सुरक्षित बैठे रहे।

हेमंत ने रुंधे गले से पूछा—"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

प्यारीशंकर ने कहा—"और मैं तुमसे पूछता हूं कि मेरी एक ही लड़की है, दूसरी कोई संतान नहीं। उस बेचारी ने तुम्हारे बाप का क्या बिगाड़ा था? तुम तो तब छोटे थे, बच्चे थे। इसके भीतर बड़े-बड़े रहस्य हैं। जब प्रकट होंगे तब देखना।"

क्षण-भर चुप रहकर प्यारीशंकर कहने लगे—"मेरा दामाद नवकांत जब मेरी लड़की के गहने चुराकर विलायत भाग गया, तब तुम बच्चे थे। पांच साल बाद जब वह बैरिस्टर बनकर लौटा तब मुहल्ले में तूफान-सा उठ खड़ा हुआ। पता नहीं तुम्हें याद है या नहीं क्योंकि उस समय तुम कलकत्ता में पढ़ रहे थे। तुम्हारे बाप गांव के सरपंच थे। उन्होंने हुक्म दिया—'लड़की को दामाद के यहां भेजना चाहो तो भेज दो किन्तु आगे कभी उसे अपने घर नहीं बुला सकोगे।"

ैंने उनके हाथ जोड़े , पांव छुए, प्रार्थना की कि 'भैया, इस बार तुम मेरी रक्षा करो। मैंने लड़के को गोबर इत्यादि खिलाकर प्रायश्चित करा दिया है। तुम लोग उसे जाति में ले लो।' परन्तु तुम्हारे बाप किसी तरह राज़ी नहीं हुए ; मैं भी इकलौती बेटी को छोड़ न सका। जाति, गांव सब छोड़ कलकत्ता आकर रहने लगा। पर यहां भी तुम्हारे पिता ने पिण्ड नहीं छोड़ा। मैं भतीजे के ब्याह की सब तैयारी कर चुका था पर तुम्हारे बाप ने जाकर लड़कीवाले को ऐसा भड़का दिया कि ब्याह भी न हो सका। तब मैंने भी प्रतिज्ञा की कि 'इसका बदला न ले लिया तो ब्राह्मण संतान नहीं।' अब तुम्हारी समझ में बात आ रही होगी। पर थोड़ा और सुन लो।

"जब तुम कालेज में पढ़ते थे, तुम्हारे छात्रावास के पास ही विप्रदास चटर्जी का मकान था। भलामानस था। अब तो उसकी मृत्यु हो चुकी है। चटर्जी महाशय के घर कुसुम नाम की एक अनाथा बालविधवा कायस्थ कन्या आश्रिता के रूप में रहती थी। लड़की बड़ी सुन्दर थी। लड़की प्रायः कपड़े सुखाने छत पर जाया करती थी। तुम्हें भी कदाचित् छत पर गए बिना पाठ याद न होता था। यह तो तुम्हीं जानते होगे कि छत पर से तुम दोनों में कोई बात-चीत होती थी या नहीं किन्तु लड़की का रंग-ढंग देखकर बूढ़े के मन में कुछ सन्देह हो गया—कामधंधे में लड़की से प्रायः भूलें होने लगीं और तपस्यालीन पार्वती की तरह उसका अन्न-जल भी छूटने लगा। किसी-किसी दिन शाम को बूढ़े के सामने ही उसकी आंखों से टप-टप आंसू चू पड़ते थे।

"बूढ़े को पता लग गया कि छत पर तुम दोनों की भेंट होती है। यहां तक कि तुम कालेज में अनुपस्थित रहकर दोपहर के समय छत पर छज्जे की छाया में पुस्तक उलटते दिखाई पड़ते थे। निर्जन स्थान में अध्ययन करने का तुम्हारा उत्साह कुछ ही दिनों से बहुत अधिक बढ़ गया था। विप्रदास ने मुझसे सलाह ली तो मैंने कह दिया—'तुम तो काशी जाने की बात बहुत दिनों से सोच ही रहे

हो। लड़की को मेरे पास छोड़कर तीर्थ-वास के लिए जाग्र
उसका भार लेता हूं।'

"विप्रदास तीर्थ चले गए। मैंने उस लड़की को श्रीपति
के यहां रख दिया। उसे ही लड़की का पिता मशहूर कर
उसके बाद जो हुआ, तुम जानते हो। तुमसे सब बातें कहक
आनन्द आ रहा है। लगता है जैसे कोई कहानी हो। मन में
है कि लिखकर किताब छपवा दूं परन्तु मुझे लिखना नहीं आ
मेरा एक भतीजा कुछ लिखा करता है, सोचता हूं उसीसे लि
परन्तु तुम और वह दोनों मिलकर लिखो तो सबसे अच्छा हो
कहानी का अंत क्या होगा, यह मैं नहीं जानता।"

हेमन्त ने पूछा—"कुसुम ने इस ब्याह में कोई आपत्ति नहीं क

प्यारीशंकर बोले—"यह समझना कठिन है कि उसे
कोई आपत्ति थी या नहीं। स्त्रियों की बात ही जुदा है, जब वे
कहती हैं तो उसे 'हां' समझना पड़ता है। नये घर में जाकर
देख न सकने के कारण उसकी हालत पागलों-सी हो गई।
तुमने भी न जाने कैसे उसके मकान का पता लगा लिया।
कालेज जाते समय तुम रास्ता भूलकर श्रीपति के मकान के
जा पड़ते और वहां बार-बार न जाने क्या ढूंढ़ा करते। ऐसा तो
जान पड़ता था कि प्रेसीडेंसी कालेज के रास्ते की खोज में
किसी भले आदमी के घर की खिड़की में तो कालेज का रास्ता
नहीं, केवल कीट-पतंगों और उन्मत्त युवकों के हृदय के लिए ही
होता है। यह सब देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ क्योंकि एक
तुम्हारी पढ़ाई की हानि होने लगी थी और दूसरी ओर लड़
अवस्था भी दिन-दिन खराब होती जा रही थी।

"एक दिन कुसुम को अपने पास बुलाकर मैंने कहा—'बेट
बूढ़ा हूं, मुझसे लजाने की आवश्यकता नहीं। तू जिसे चाहत
उसे मैं जानता हूं। वह लड़का भी मिट्टी हुआ जा रहा है और
तू भी गलती जा रही है। मैं चाहता हूं कि दोनों को मिला

सुनते ही कुसुम जोर से रो पड़ी और तुरन्त उठकर भाग गई। मैं प्रायः शाम को श्रीपति के घर चला जाता था। कुसुम को बुलाकर तुम्हारी चर्चा करता। धीरे-धीरे उसकी शर्म दूर हो गई। मैंने उसे समझा दिया कि ब्याह के सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

"कुसुम ने कहा—'ब्याह कैसे होगा ?'

"मैंने कहा—'कुलीन की कन्या बताकर।'

"बड़ी बहस हुई। अन्त में उसने तुम्हारी राय जाननी चाही। मैंने कहा—'वह तो पागल हो ही रहा है, उससे सब बातें कहने से क्या लाभ है ? चुपचाप शान्तिपूर्वक सब कुछ निपट जाना ही दोनों के लिए अच्छा है। बात खुलने की तो कोई संभावना है नहीं, फिर उसे क्यों जीवन-भर के लिए चिन्ता में डाला जाए ?'

"पता नहीं, कुसुम ने क्या समझा, क्या नहीं। वह कभी रोती, कभी चुप बैठ रहती। जब मैं कहता—'तो फिर जाने दो' तो वह अधीर हो उठती। अन्त में मैंने श्रीपति द्वारा तुम्हारे पास ब्याह का प्रस्ताव भिजवाया। तुमने स्वीकृति देने में ज़रा भी देर न की। बस, ब्याह की बात पक्की हो गई।

"ब्याह के एक दिन पहले कुसुम फूट पड़ी। पैरों पड़-पड़कर कहने लगी—'नहीं ताऊ जी, ऐसा मत करो।'

"मैंने कहा—'तू तो पागल है। अब कहीं बात फेरी जा सकती है?'

"कुसुम ने कहा—'प्रकट कर दो कि अचानक रात को वह मर गई और मुझे कहीं चुपके से भेज दो।'

"मैंने कहा—'उस लड़के की क्या हालत होगी। इतने दिनों की आशा पूरी होने जा रही है, इस कल्पना के स्वर्ग में वह बैठा हुआ है। ऐसी हालत में मैं उसे जाकर तुम्हारे मरने की खबर दूं और फिर दूसरे दिन उसकी मृत्यु की खबर तुम्हें देनी पड़े। फिर संध्या को सचमुच तुम्हारी मृत्यु का समाचार मुझे मिले। इस बुढ़ापे में मुझे स्त्री-हत्या और ब्रह्म-हत्या का पाप लगे ?'

"फिर तो समय पर विवाह सम्पन्न हुआ। मैं अपने कर्तव्य से

मुक्त हो गया। इसके बाद क्या हुआ, इसे तुम जानते ही हो।"

हेमन्त—पर फिर आपने उस बात को प्रकट क्यों किया?

"मैंने देखा कि तुम्हारी छोटी बहिन की शादी पक्की हो चुकी है। तब सोचा कि एक ब्राह्मण की जाति तो बिगाड़ चुका, अब दूसरे की क्यों बिगाड़ूं? पहला कार्य तो कर्तव्यवश करना पड़ा था। इसीलिए उन लोगों को चिट्ठी लिख दी।"

हेमन्त—अब यदि मैं उसे छोड़ दूं तो उसकी क्या हालत होगी? आप उसे आश्रय देंगे?

"मैं अपना कर्तव्य कर चुका। दूसरे की परित्यक्ता पत्नी का भरण-पोषण करना मेरा काम नहीं है।

४

कृष्णपक्ष की अंधेरी रात है। तालाब के किनारे खड़े लीची के पेड़ों पर मानो किसीने स्याही फेर दी है। दक्षिण पवन अंधे की भांति उन्हींमें उमड़-घुमड़ रहा है। आकाश में नक्षत्र टकटकी लगाए अंधकार को चीरकर उसका रहस्य देख लेना चाहते हैं।

हेमन्त के कमरे में आज शाम से ही रोशनी नहीं है। हेमन्त पलंग पर बैठा सामने की खिड़की से उस गहन अंधकार की ओर देख रहा है। कुसुम जमीन पर उसके पांव पकड़े और उन्हींपर अपना सिर रखे पड़ी है। समय मानो स्तम्भित समुद्र की भांति स्थिर हो गया है। चारों ओर प्रलय है; बीच में एक विचारक है और उसके पांव पर पड़ी एक अपराधिनी।

वही चप्पल की आवाज़ सीढ़ियों पर फिर आती है।

हरिहर मुखर्जी ने दरवाज़े के पास खड़े होकर कहा—"बहुत विलम्ब हो रहा है। अब मैं और समय नहीं दे सकता। बहू को तुरन्त घर से निकाल बाहर करो।"

इन शब्दों को सुनते ही कुसुम ने अपने जीवन की अन्तिम साध

पूरी करने के लिए हेमन्त के पांव और भी जोर से पकड़ लिए। फिर उन्हें चूमकर और पदधूलि माथे पर लगाकर पांव छोड़ दिए।

हेमन्त उठा और पिता के पास जाकर बोला—"अपनी विवाहिता को मैं नहीं त्याग सकता।"

हरिहर ने गरजकर पूछा—"तो क्या अपनी जाति त्याग देगा?"

"मैं जात-पांत नहीं मानता।"

"तो जा, तू भी घर से निकल जा।"

०००

मुद्रक : शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली